गिजुभाई बधेका एवं प्रोफेसर यशपाल द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

राजीव अग्रवाल
चन्द्र शेखर प्रताप सिंह
संजीत कुमार यादव

गिजुभाई बधेका एवं प्रोफेसर यशपाल द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. राजीव अग्रवाल
डीन- शिक्षा संकाय
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उत्तर प्रदेश)

चंद्रशेखर प्रताप सिंह
M. Ed., M. A. (Education, Political Science), NET (Education)

संजीत कुमार यादव
M. A. (English Literature), B. Ed.

गिजुभाई बधेका एवं प्रोफेसर यशपाल द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

राजीव अग्रवाल
चंद्रशेखर प्रताप सिंह
संजीत कुमार यादव

E-book संस्करण: 2021

मूल्य : ₹49

ISBN: 978-93-5457-261-6

प्रकाशक -
संजीत कुमार यादव
ग्राम- सुजनीडीह, पोस्ट- सोहाँसा, जिला- जौनपुर (उ.प्र.) - 222204
Mob.- 9198472064
ई-मेल: skjyoti.net@gmail.com

प्राक्कथन

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। इस नियम के अधीन विश्व के समस्त तत्व अविच्छिन्न रूप से निरन्तर परिवर्तनशील है। विश्व की इस परिवर्तनशीलता के कारण यहाँ भौतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक दशाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ता है तथा इसमें भी परिवर्तन होता रहता है। इसीलिए शिक्षा को गतिशील एवं परिवर्तनशील प्रक्रिया कहा गया है। शिक्षा ही मानव का निर्माण करती है तथा व्यक्ति को इस रूप में तैयार करती है कि वह समाज में अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वहन कर सके।

किसी भी देश की कोई भी शिक्षा व्यवस्था तभी कालावधी तक अपने युग की आशाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम नहीं रह पाती, तब वहाँ शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन अपरिहार्य समझा जाने लगता है। ऐसी परिस्थिति में कोई अग्रदर्शी चिन्तन अपने काल की भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक दशाओं के अनुरूप शिक्षा में वांछित परिवर्तन हेतु विगुल फूँकता है; जिसके परिणामस्वरूप तत्कालीन शिक्षा के स्वरूप में बदलाव आता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। आज विश्व के सम्मुख जो शिक्षा का स्वरूप दिखायी पड़ता है; वह इसी परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रतिफल है। शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन करने वाले विशिष्ट विचारों में भारत के गिजूभाई बधेका तथा यशपाल जी का नाम अग्रणी है; जिन्होंने अपनी समकालीन शिक्षा की विसंगतियों को परख कर उसे युगानुरूप स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया। ये दोनों ही महापुरुष मानव कल्याण की भूमिका में समान विचार वाले रहे हैं। इसी कारण इनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों में भी पर्याप्त समानता रहती है। प्रस्तुत पुस्तक की विषय वस्तु ***गिजुभाई बधेका एवं प्रोफेसर यशपाल द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन*** पर केन्द्रित है।

प्रस्तुत पुस्तक का शीर्षक **गिजुभाई बधेका एवं प्रोफेसर यशपाल द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन** है। प्रस्तुत पुस्तक को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय का शीर्षक अध्ययन परिचय है जिसके अन्तर्गत शोध अध्ययन की पृष्ठभूमि,शोध अध्ययन की आवश्यकता, शोध अध्ययन का महत्व, शोध के उद्देश्य, शोध विधि, तथा शोध परिसीमन पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में गिजुभाई बधेका एवं यशपाल जी से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में गिजुभाई बधेका का जीवन दर्शन एवं शैक्षिक विचार प्रस्तुत किये गये हैं। शैक्षिक विचार के अन्तर्गत गिजुभाई बधेका के अनुसार शिक्षा की अवधारणा, शिक्षा के उद्देश्य एवं विद्यालय, शिक्षक, विद्यार्थी, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि तथा अनुशासन के विषय में उनके विचारों पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय में यशपाल जी का जीवन दर्शन एवं शैक्षिक विचार प्रस्तुत किये गए हैं। शैक्षिक विचार के अन्तर्गत यशपाल जी की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक मान्यताओं का वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय में गिजुभाई बधेका तथा यशपाल जी के जीवन दर्शन एवं शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय में गिजुभाई बधेका तथा यशपाल जी के शैक्षिक विचारों की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या, शिक्षक के कर्तव्य, छात्र, शिक्षण-विधि, विद्यालय एवं अनुशासन के सन्दर्भ में वर्तमान से प्रासंगिकता स्पष्ट की गयी है।

सप्तम अध्याय में शोध-निष्कर्ष, शोध का शैक्षिक महत्व, शोध के सुझाव तथा भावी शोध हेतु सुझाव प्रस्तुत किये गए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक लघु शोध प्रबन्ध पर आधारित हैं। शोध कार्य के प्रकाशन से वैज्ञानिक ज्ञान भण्डार में वृद्धि होती है एवं नवीन अनुसन्धानों को प्रेरणा मिलती है। किसी भी शोध कार्य का तब तक कोई अर्थ नहीं है; जब तक की वह जनसामान्य के लिए सुलभ ना हो। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में किया गया एक प्रयास है। यह पुस्तक विद्यालय से सम्बन्धित हर एक घटक में प्रेरणा का संचार करने में सहायक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के सृजन में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में उल्लेखित विभिन्न पुस्तकों का सहयोग लिया गया है। हम सभी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में अनेक त्रुटियाँ होना स्वाभाविक हैं। अतः यदि अनुभवी विद्वतगण अवगत कराने का कष्ट करेंगे तो हम अत्यन्त आभारी होंगे तथा भावी संस्करण में संशोधन का प्रयास करेंगे।

15 जुलाई, 2021

राजीव अग्रवाल
चंद्रशेखर प्रताप सिंह
संजीत कुमार यादव

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय- अध्ययन का परिचय

1.1शोध अध्ययन की पृष्ठभूमि

व्यक्ति जिस जगत में रहता है वह गतिशील है और इस गतिशील जगत के उत्पत्ति अन्त व लक्ष्य के बारे में जानने की इच्छा व्यक्ति में प्रारम्भ से ही रही है और इस जिज्ञासा को तृप्त करने का कार्य शिक्षा करती है| शिक्षा व्यक्ति के अज्ञान को दूर करने का साधन है सृष्टि में विद्यमान सत्य को जान लेने पर ही व्यक्ति अपनी समस्याओं को हल कर पाता है और शिक्षा ही व्यक्ति को वह क्षमता प्रदान करती है जिसके द्वारा वह समस्या में निहित सत्य का ज्ञान प्राप्त कर सके| वह सत्य जो मानव के भीतर विद्यमान है, यद्यपि विज्ञान और धर्म दोनों ही सत्य की खोज में संलग्न हैं परन्तु दोनों में अन्तर है, विज्ञान बाह्य सत्य से सम्बन्धित है जबकि अध्यात्म आन्तरिक सत्य का निरूपण करता है| मानव के ज्ञान के लिए विज्ञान व अध्यात्म दोनों की ही आवश्यकता होती है जिससे कि मनुष्य सम्पूर्णता की प्राप्ति कर सके इस हेतु मनुष्य शिक्षा का सहारा लेता है| शिक्षा की उपयोगिता व्यक्ति व समाज दोनों के ही सन्दर्भ में है| व्यक्ति के लिए शिक्षा को इसलिए महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि शिक्षा से व्यक्ति का आचरण, विचार व व्यवहार सुसंस्कृत हो जाते हैं, उनका जीवन उत्तरोत्तर उत्कृष्ट हो जाता है, इसके फलस्वरूप समाज का विकास स्वत: ही हो जाता है क्योंकि शिक्षा समाज को नियंत्रित व संस्कारित करने वाली प्रक्रिया भी है| एक प्रक्रिया के रूप में शिक्षा किसी उद्देश्य की ओर उन्मुख होती है| शैक्षिक उद्देश्य ही शिक्षा की दिशा निर्धारण का कार्य करते हैं| शिक्षा के उद्देश्य एक ओर तो समाज के आदर्शों, मूल्यों व मान्यताओं को मूर्त रूप देते हैं वहीं दूसरी ओर ये इनकी व्यावहारिकताओं को परखते हैं अतः समाज के मूल्यों,आदर्शों आकांक्षाओं के आधार पर शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण होता है| शिक्षा के उद्देश्यों को ही केन्द्र बिन्दु मानकर शिक्षा के विभिन्न पक्षों,पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, परीक्षा प्रणाली आदि का चयन, संचालन व सुधार किया जा सकता है| इस हेतु शिक्षा कई स्तरों पर संचालित की जाती है| यथा प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च स्तर| प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का विकास

व उसका सामाजीकरण करना होता है,वही माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का उद्देश्य बालक में अनुशासनात्मक व नैतिक मूल्यों का विकास करना है तथा उच्च स्तर पर आर्थिक व व्यवसाय क्षमता का विकास करना है| इन तीनों में से माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक व उच्च शिक्षा के बीच की कड़ी है| जिसके अन्तर्गत आने वाले विद्यार्थी बहुत ही महत्वपूर्ण आयु के होते हैं ऐसे में विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम का संगठन किया जाता है| पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी विषयों के द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है इस उद्देश्य हेतु शिक्षा में विभिन्न विषयों की व्यवस्था की गई है जिन्हें प्रकृति के आधार पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है|
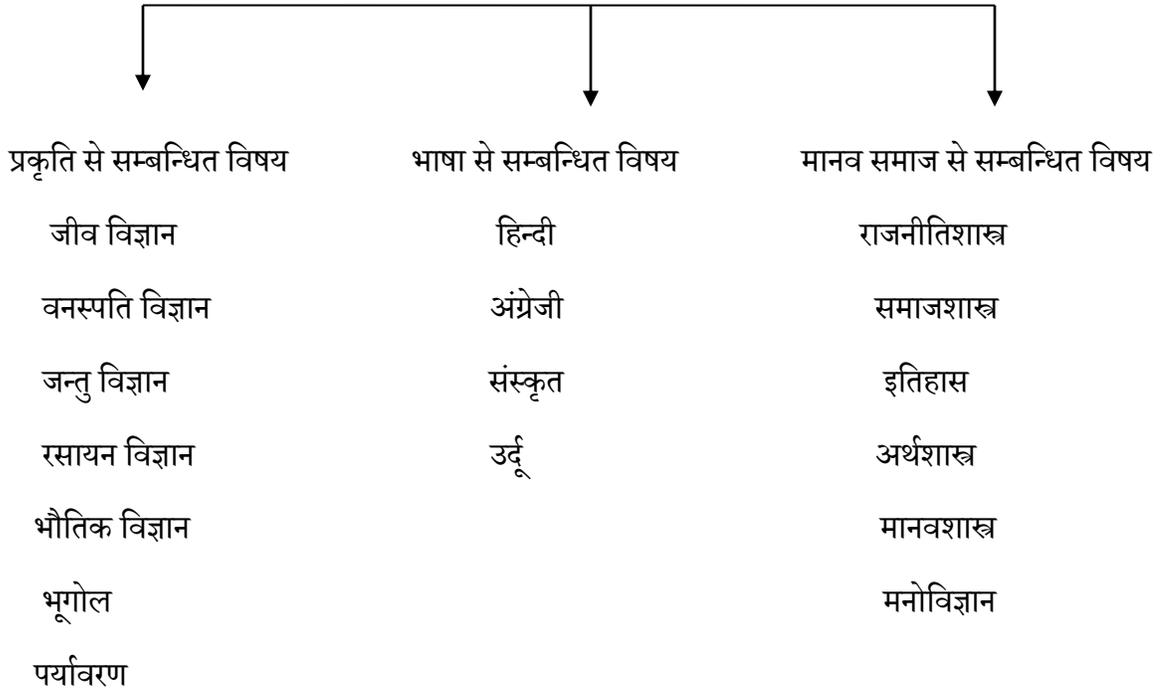
उपरोक्त सभी विषयों का अपना महत्व है जिसमें प्रकृति से सम्बन्धित विषयों में प्रकृति में व्याप्त समस्त सजीव व निर्जीव वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है जिसके अन्तर्गत मानव जीवन जन्तु पेड़-पौधे भौतिक व रासायनिक क्रियाओं हुआ हमारे आसपास के पर्यावरण का विशिष्ट वर्णन होता है वही भाषा के विषयों में भाषा का विकास हुआ उससे सम्बन्धित साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया जाता है क्योंकि यह विषय ही मनुष्य के बीच संवाद होते हैं एवं समस्त ज्ञान सोच विचार इन्हीं के माध्यम से प्रतिबन्धित होता है तीसरे चरण

के अन्तर्गत मानव समाज से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन किया जाता है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक विज्ञान का अध्ययन राजनैतिक व्यवस्थाओं कानून नियम व शासन प्रणालियों की जानकारी के उद्देश्य से किया जाता है समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक गतिविधियों के बारे में अध्ययन किया जाता है व समाज की जानकारी के साथ विकास किस प्रकार हो रहा है के उद्देश्य इतिहास विषय का अध्ययन किया जाता है|

ये सभी विषय अपनी अपनी पद्धति के अनुसार ज्ञान प्रदान करते हैं परन्तु ज्ञान अपने आप में एक इकाई है जिसे अलग नहीं किया जा सकता है केवल सुविधा की दृष्टि से एक सीमित स्तर तक ज्ञान का वर्गीकरण विषयों के माध्यम से किया गया है यदि ज्ञान को समय के आधार पर वर्गीकृत करते हैं तब हमारे आस पास तीन प्रकार के ज्ञान सामने आते हैं प्रथम अतीत का ज्ञान देते वर्तमान का ज्ञान दिया गया इस प्रकार ज्ञान के प्रकारों में यदि विषयों को देखें यह दिल से जुड़े होने के कारण इतिहास में वर्तमान से जुड़े होने के कारण भाषा साहित्य एवं अन्य सामाजिक विषय से जुड़े होने के कारण विज्ञान के विषयों में दिखाई देते हैं|

1.2 शोध अध्ययन की आवश्यकता

बालक कुछ ऐसी मूल प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है जो सभ्यता तथा सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से उत्तम नहीं होती| बालक के व्यवहार तथा पशुओं के व्यवहार में काफी समानता होती है|शिक्षा द्वारा मनुष्य को सभ्य और सुसंस्कृत बनाया जाता है,उसकी बर्बरता एवं निर्ममता को नष्ट किया जाता है| अशिक्षित व्यक्ति की स्थिति जंगल में पनपने बाले पेड़-पौधों जैसी होती है| एक शिक्षित व्यक्ति बाग का वह पेड़ होता है जो माली के संरक्षण में विकास के सभी तत्व संतुलित रूप में पाता रहता है| शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है और उसे सदज्ञान की प्राप्ति होती है|

आज के वैज्ञानिक तथा तकनीकी युग में एक ओर जहाँ मनुष्य के सुख-सुविधाओं में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर आणविक बमों के आविष्कार ने सम्पूर्ण मानव के असितत्व को खतरे में डाल दिया है| विकास की इस तीव्र आँधी ने जहाँ जीवन के अधिकांश मानवीय मूल्यों, आस्थाओं और प्रतीकों पर प्रहार किया है वहीं दूसरी तरफ सम्पूर्ण पीढ़ी को परम्परा व आधुकनिकता,जड़ता एवं गतिमयता के द्वंद्व में भटकने के लिए छोड़ दिया है| मानवीय,आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्य समाप्त हो रहे हैं और भौतिकवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा मिल

रहा है परिणामस्वरूप मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है| आज व्यक्ति के जीवन में भौतिक सुख-सुविधा एवं समृद्धि के नाम पर बहुत कुछ है, ज्ञान कौशल की कमी नहीं है इसके बावजूद भी चारों तरफ अशान्ति,अराजकता एवं आतंकवाद का साम्राज्य व्याप्त है| मनुष्य,मनुष्य से ही भयभीत होने लगा है तथा लोगों का एक दूसरे पर विश्वास नहीं रहा है| यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वर्तमान सामाजिक परिवेश की सभी समस्याओं की जड़ दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली ही है|

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था अनेक समस्याओं से ग्रसित है| शिक्षा का उद्देश्यविहीन होना सबसे ज़्यादा आबादी समस्या है| यदपि विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये जाते रहे हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि शिक्षा बिना किसी उद्देश्य के चल रही है| वर्तमान शिक्षा में न कोई योजना है और न कोई प्रयोजन| पहले शिक्षा का उद्देश्य मुक्ति होती थी, चरित्र निर्माण होता था किन्तु आज मुक्ति, आध्यात्मिकता एवं चरित्र निर्माण की बात करना लोग अप्रासंगिक मान रहे हैं| आज हम अपनी आवश्यकताओं एवं विश्व समाज को गति प्रदान करने के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित नहीं कर प रहे हैं| उद्देश्यविहीन शिक्षा की क्या दशा है एवं क्या हो सकती है, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है| आज भारत में शिक्षा का स्वरूप न तो गुरुकुल परम्परा के आदर्श एवं स्वाभाविक विकास पर आधारित है और न ही इसमें विदेशी संस्थानिक परम्परा के प्रकृष्ट तत्वों का अनुसरण किया गया है| यह शिक्षा न तो उच्चतम ज्ञान-विज्ञान प्रदान करने में सक्षम है और न नौकरी दिलाने में| कहने को तो शिक्षा कल्याणकारी है किन्तु यह रोजगारमुखी नहीं है फलस्वरूप बेरोजगारों में अफरा-तफरी मची है| वर्तमान समय में छात्र अपनी उस सभ्यता एवं संस्कृति से विमुख हो रहे हैं जिसे अंगीकरण करने पर न केवल अपना कल्याण अपितु पीड़ित मानवता को भी शान्ति प्रदान की जा सकती है| आज के विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावना की छाया तक दृष्टीगोचर नहीं हो रही है| जो व्यक्ति अपनी मातृ-भूमि से प्रेम नहीं करता वह दूसरों को कैसे सम्मान दे सकता है?

शिक्षा द्वारा व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है|आज की शिक्षा द्वारा आध्यात्मिक विकास को दूर, शारीरिक एवं मानसिक विकास भी नहीं हो पा रहा है| यह शिक्षा न तो व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति कर पा रही है और न ही समाज के आवश्यकताओं की पूर्ति| वर्तमान शिक्षा का

वास्तविक जीवन का कोई सामंजस्य नहीं है| एक आदर्श एवं सुसंचालित विद्यालय-एक सुखी परिवार, एक पवित्र मन्दिर, एक सामाजिक संस्था का प्रतिरूप, लघुरूप में राज्य और मनमोहक वृन्दावन के समान होता है| परन्तु आधुनिक युग में तथाकथित दुकानों के रूप में प्रतिवर्ष जो विद्यालय खुलते जा रहे हैं वहाँ के अध्यापक, प्रधानाचार्य इत्यादि को जब तक यह ज्ञात नहीं होगा की बालक को कैसे पढ़ाना है,किस प्रकार बालक को राष्ट्र के सजग प्रहरी के रूप में तैयार किया जा सकता है तब तक हमारी शिक्षा प्रणाली में सुधार नहीं आ सकता है| वर्तमान परिवेश में विद्यालय ऐसे स्थान बनते जा रहे हैं जहाँ विद्यार्थियों को सतत अधिगमकर्ता बनाने की बजाय सूचनाओं का ग्रहणकर्ता मात्र बनाया जा रहा है| विद्यार्थियों के स्वयं की समझ, निर्णय क्षमता, आकांक्षा, अपेक्षा और इच्छा इन सब को भविष्य के नाम पर एक दवाव बनाकर नकार दिया जाता है| वह नयी जानकारी व ज्ञान रचने की मानवीय सामर्थ के महत्वपूर्ण आयाम को अनदेखा कर देता है और पाठ्यचर्या का बोझ छात्रों पर दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है| ऐसा होना इस बात का प्रमाण है कि आज हमारे शैक्षिक उद्देश्यों और शिक्षा की गुणवत्ता में गहरी विकृति आ गयी है|

भारतीय शिक्षा के समक्ष ऐसी अनेक समस्याये हैं जिससे इसकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी है| वर्तमान शिक्षा प्रणाली पीआर टिप्पणी करते हुए रमामूर्ती आयोग ने कहा था कि राष्ट्र के सम्पूर्ण संकट के साथ शिक्षा का अपना संकट जुड़ा हुआ है किन्तु दु:ख की बात यह है कि जो शिक्षा देश में चल रही है इसमें वह सामर्थ्य एवं शक्ति ही नहीं रह गयी है जिससे वह अपने आयामों के संकट का समाधान निकाल सके| यद्यपि यह कहना सही है,इसके कारण ढूढ़ना मुश्किल नहीं है| हमारी आधुनिक शिक्षा स्कूल की चहारदीवारी के भीतर बन्द है| यह पुस्तकों एवं परीक्षाओं से बँधी हुई है| इतने पर भी न तो पुस्तकें पढ़ने योग्य हैं न ही परीक्षाएँ प्रामाणिक रह गयी हैं| आज की शिक्षा द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास नहीं हो पा रहा है| वर्तमान दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था ने उन्हें अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक माहौल से ही काटकर अलग कर दिया है| लोग अपने ही समाज में पराये हो गए हैं| इनके जीवन में आस्था ही खो गयी है| ऐसी शिक्षा पुनर्निर्माण का माध्यम कैसे बन सकती है एवं कैसे युवकों एवं युवतियों में कुछ कर गुजरने की प्रेरणा भर सकती है?

स्पष्ट है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था अधोपतन की स्थिति में आ गयी है| आज की शिक्षा में ना तो आध्यात्मिकता का कुछ अंश है और ना विज्ञान का वैभव, दोनों पक्षों से अलग, आज की शिक्षा ऐसी है कि इसमें नवयुवक के सृजन में सहयोगी की बात तो दूर, व्यक्ति का भी कल्याण करने की शक्ति भी नहीं है| आज के उद्देश्य विहीन शैक्षिक परिवेश में शिक्षा को ज्ञान प्राप्ति का आधार न मानकर मात्र डिग्रियां प्राप्त करना माना जा रहा है जिससे समाज में शिक्षित बेरोजगारों की एक लम्बी कतार बनती जा रही है| इस कारण से समाज में आज के विद्यालय और शिक्षण संस्थाएं मात्र मनोरंजन और खानापूर्ति के साधन बनते जा रहे हैं| आज के छात्र और शिक्षक अनैतिक गतिविधियों में लिप्त हैं| ये सब अराजकतावादी तत्व शिक्षा को गलत दिशा में ले जा रहे हैं| इन परिस्थितियों को देखने के उपरान्त मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कहीं हमारी शिक्षण पद्धति में कोई दोष तो नहीं है? यदि ऐसा है तो उसमें क्या विसंगतियां हैं? ऐसे कौन से तत्व हैं जिनकी आज आवश्यकता महसूस नहीं की जा रही है| ऐसे किन तत्वों का समावेश होना आवश्यक है जो आज की प्रचलित दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली को व्यवस्थित करने में सहायक होगें| भारत वर्ष प्राचीन काल से ही अध्यात्म प्रधान देश रहा है क्योंकि प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा में अध्यात्मिक पहलू सर्वोपरि था| वर्तमान समय में शिक्षा की स्थिति अत्यन्त विडम्बनापूर्ण दयनीय हालत में अग्रसर है| ऐसे समय में विश्व के महान दार्शनिकों और विचारकों के विचारों को छात्र के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में नए सिरे से मंथन करने की आवश्यकता है|
यशपाल जी और गिजूभाई ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन पद्धति को जन्म दिया जिसमें सत्य के विभिन्न पक्षों का साक्षात्कार करने में मानव मत का अनेक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया तथा अन्तरनिहित एकता के आधार पर तत्कालिक विभिन्न संस्कृतियों का सहिष्णुतापूर्वक अध्ययन करके उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना की गयी| दोनों विचारकों ने शिक्षा पद्धति के संगठन में बालक को एक महत्वपूर्ण मानव के रूप में विकसित करने का विचार रखा जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने अपने शिक्षा सिद्धान्त में बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना महत्वपूर्ण माना है| इसी कारण शोधकर्ता को यशपाल जी तथा गिजुभाई बधेका के शैक्षिक विचारों के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई|

1.3 शोध अध्ययन का महत्व

यशपाल जी एवं गिजूभाई के शैक्षिक विचारों,आदर्शों तथा मूल्यों का महत्व अनेक दृष्टियों एसआर है| दोनों विचारकों के अनुसार शिक्षा का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसकी अन्तर्गत वे सभी कार्य आ जाते हैं जिन को पूरा करने से व्यक्ति अपने जीवन को सुखी तथा सफल बनाते हुए सामाजिक कार्यों को उचित समय पर पूरा करने के योग बन जाता है| कहने का तात्पर्य यह है कि सामान्य रूप से शिक्षा व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों का नियंत्रण करते हुए उसकी जन्मजात शक्तियों के विकास में इस प्रकार सहायता प्रदान करती है कि उसका सर्वांगीण विकास हो सके| यही नहीं शिक्षा व्यक्ति में चारित्रिक एवं नैतिक गुणों को विकसित करके उसे प्रौढ़ जीवन के लिए इस प्रकार तैयार करती है कि वह अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का संरक्षण करते हुए राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने में तनिक भी नहीं हिचकते|

शिक्षा मानवीय जीवन में व्यक्ति को जहाँ एक ओर वातावरण से अनुकूलित करने तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुए भौतिक सम्पन्नता को प्राप्त करके चरित्रवान, बुद्धिमान, वीर, साहसी तथा उत्तम नागरिक के रूप में आत्मनिर्भर बनाकर उसका सर्वांगीण विकास करती है वहीं दूसरी ओर शिक्षा व्यक्ति के अन्दर राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता, समाजिक कुशलता तथा अनुशासन आदि भावनाओं को विकसित करके उसे इस योग्य बना देती है कि वह सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करते हुए राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि मानने लगता है| जिस प्रकार एक ओर शिक्षा बालक का सर्वांगीण विकास करके उसे तेजस्वी बुद्धिमान,चरित्रवान,विद्वान वीर तथा साहसी बनाती है उसी प्रकार दूसरी ओर यह समाज की उन्नति के लिए भी एक आवश्यक तथा शक्तिशाली साधन है| शिक्षा के द्वारा समाज भावी पीढ़ी के बालकों को उच्च आदर्शों, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों तथा परम्पराओं आदि सांस्कृतिक सम्पत्ति को इस प्रकार से हस्तान्तरित करता है उनके हृदय में देश प्रेम तथा त्याग की भावना प्रज्ज्वलित हो जाती है| जब ऐसी भावनाओं तथा आदर्शों से भरे हुए बालक तैयार होकर समाज अथवा देश की सेवा का व्रत धारण करते हैं तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हम अपने प्राचीन सुसंस्कारित मूल्यों को संजोते हुए एक आदर्श राष्ट्र के निर्माण की ओर अग्रसर हैं|

प्रस्तुत अध्ययन शिक्षा जगत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है| बालक के सर्वांगीण विकास के लिए बालक को मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है| गिजुभाई ने बालक को विद्यालय के प्रति रुचि पैदा करने तथा कक्षा में शिक्षक की बात को ध्यान पूर्वक सुनने के लिए अनेक विधियां बतायी जबकि यशपाल जी ने बालक को सर्वांगीण विकास पर जोर दिया यदि हम दोनों शैक्षिक विचारकों के विचारों को आत्मसात करके उनके द्वारा बताई गई शिक्षण पद्धतियों द्वारा शिक्षा प्रदान करें तो हमारा शिक्षण कार्य प्रभावित रहेगा तथा हम बालकों को समाज के लिए योग्य एवं चरित्रवान नागरिक बना सकेंगे|

1.4 शोध शीर्षक

अध्यान की आवश्यकता को देखते हुए प्रस्तुत शोध अध्ययन का औपचारिक शीर्षक निम्नवत है:

"गिजुभाई बधेका एवं प्रोफेसर यशपाल द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन" |

1.5 शोध उद्देश्य

अध्ययन की आवश्यकता को देखते हुए प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गये हैं -

1. यशपाल जी तथा गिजुभाई के दृष्टिकोण से शिक्षा की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन करना|
2. यशपाल जी तथा गिजुभाई के दृष्टिकोण से शिक्षा के उद्देश्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना|
3. यशपाल जी तथा गिजुभाई के दृष्टिकोण से विद्यालयी संकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन करना|
4. यशपाल जी तथा गिजुभाई के दृष्टिकोण से शिक्षक सम्बन्धी संकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन करना|
5. यशपाल जी तथा गिजुभाई के दृष्टिकोण से विद्यार्थी सम्बन्धी संकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन करना|
6. यशपाल जी तथा गिजुभाई के दृष्टिकोण से पाठ्यक्रम सम्बन्धी संकलना का तुलनात्मक अध्ययन करना|
7. यशपाल जी तथा गिजुभाई के दृष्टिकोण से शिक्षण-विधियों का तुलनात्मक अध्ययन करना|
8. यशपाल जी तथा गिजुभाई के दृष्टिकोण से अनुशासन के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन करना|
9. यशपाल जी तथा गिजुभाई के शैक्षिक विचारों की वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में प्रासंगिकता का तुलनात्मक अध्ययन करना|

1.6 शोध विधि

शिक्षा जैसे संश्लिष्ट के विषय में शोध के वर्गीकरण की कोई सर्वमान्य विधि नहीं है| हितार्वे ने जहाँ ऐतिहासिक शोध, सर्वेक्षण शोध, प्रयोगात्मक शोध तथा व्यक्ति अध्ययन नामक चार प्रकार का शोध बताया है वहीं जान डब्ल्यू० बेस्ट ने शिक्षा में तीन प्रकार बताया है-1. ऐतिहासिक शोध 2. विवरणात्मक शोध 3. प्रयोगात्मक शोध|

अन्य विद्वानों ने भी शैक्षिक शोध को अलग-अलग प्रकार का बताया है परन्तु यह वर्गीकरण शोध विधि के आधार पर किया गया है| भारत में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने अपने 'सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन' में शोध का वर्गीकरण शोध विधि के आधार पर न करके क्षेत्र के आधार पर किया है| इस वर्ग में प्रस्तुत शोध अध्ययन दार्शनिक शोध की कोटि में आता है|

प्रस्तुत शोध कार्य में निम्नलिखित दो शोध-विधियों का प्रयोग किया गया है-

1.6.1 ऐतिहासिक शोध विधि

1.6.2 तुलनात्मक शोध विधि

1.6.1 ऐतिहासिक शोध विधि

ऐतिहासिक शोध विधि के अन्तर्गत वर्तमान को अतीत की घटनाओं के अविरल प्रवाह तथा क्रमिक विकास की कड़ी मानकर उनका अध्ययन किया जाता है| जॉन डब्ल्यू० बेस्ट ने ऐतिहासिक शोध विधि को निम्न प्रकार से स्पष्ट करने का प्रयास किया है - "इस प्रक्रिया में सामान्य सिद्धान्त निरूपण करने हेतु अतीत की घटनाओं का अन्वेषण करना, अभिलेख तैयार करना तथा व्याख्या करना सम्मिलित होता है ताकि अतीत एवं वर्तमान को समझने तथा भविष्य के प्रति प्रत्याशा करने में मदद मिल सके|"

चूँकि यशपाल जी तथा गिजुभाई दिवंगत हो चुके हैं, इसलिए इनके शैक्षिक विचारों का अध्ययन ऐतिहासिक विधि द्वारा ही संम्भव है| इसी कारण प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए ऐतिहासिक शोध-विधि का चयन किया गया है|

ऐतिहासिक शोध-विधि का प्रयोग यशपाल जी तथा गिजुभाई के जीवन दर्शन तथा शैक्षिक विचारों के अध्ययन एवं तुलनात्मक विश्लेषण हेतु किया गया है|

इस स्तर पर दो प्रकार के स्रोतों का सहारा लिया गया है-

(अ) प्राथमिक स्रोत

(ब) गौण स्रोत या द्वितीयक स्रोत

(अ) प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत यशपाल जी तथा गिजुभाई द्वारा लिखित मूल ग्रन्थों एवं रचनाओं का उपयोग किया गया है| इसके अतिरिक्त इनके लेखों,भाषणों तथा पत्रों का अध्यन किया गया है| प्राथमिक स्रोत ही शोध विषय का मुख्य आधार है

प्राथमिक स्रोत के रूप में यशपाल जी द्वारा रचित ग्रंथों एवं रचनाओं का अध्ययन किया गया जिनमें से प्रमुख निम्नवत हैं –

कहानी:- 1.ज्ञानदन 2.अभिशाप्त 3.तर्क का तूफान 4.भस्मावृत चिंगारी 5.वो दुनिया6.फूलों का कुर्ता 7.धर्मयुद्ध 8.उत्तराधिकारी 9|चित्र का शीर्षक इत्यादि|

उपन्यास:- 1.दादा कामरेड 2.देशद्रोही 3.पार्टी कामरेड 4.दिव्या 5.अमिता 6.झूठा सच 7.अप्सरा का शाप 8.मेरे तेरी उसकी बात|

निबन्ध:- 1.न्याय का संघर्ष 2.चक्कर क्लब 3.बात-बात में बात 4.देख,सोच,समझा 5.सिंघावलोकन|

इसी प्रकार गिजूभाई द्वारा लिखित पुस्तकों का अध्ययन का स्रोत के रूप में किया गया है- 1.दिवास्वप्न 2.मोंटेसरी शिक्षा पद्धति 3. प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पद्धतियां 4.कथा कहानी 5.प्राथमिक विद्यालय में भाषा शिक्षा 6.शिक्षकों से 7. प्राथमिक विद्यालय में व्यवसायिक शिक्षा 8. चलते फिरते शिक्षा 9. बाल शिक्षा जैसा मैंने समझा 10. माता पिता से 11. मां बाप बनना कठिन है 12. माता पिता के प्रश्न 13. ऐसे हो शिक्षक 14. माता-पिता की माथापच्ची 15. घूमर स्रोत|

(ब) गौण स्रोत या द्वितीयक स्रोत

गौढ़ स्रोत के अन्तर्गत यशपाल जी एवं गिजुभाई के जीवन दर्शन एवं शैक्षिक विचारों के विषय में अन्य विद्वानों के ग्रंथों,समीक्षाओं,लेखों,पत्रों,संस्करणों आदि का अध्ययन किया गया| गौढ़ स्रोतों की अपनी सीमाएं होती हैं इसलिए इनका उपयोग सीमित रूप में प्राथमिक स्रोत से प्राप्त ज्ञान के विश्लेषण,मूल्यांकन और तुलना के लिए किया गया है|

तुलनात्मक शोध विधि

किन्हीं दो या दो से अधिक व्यक्तियों, कारकों, तथ्यों, घटनाओं आदि का गहन विश्लेषण कर उनमें निहित समानताओं तथा असमानताओं को प्रस्तुत करने के लिए तुलनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया जाता है|

प्रस्तुत शोध अध्ययन में यशपाल जी एवं गिजूभाई के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण कर इनमें व्याप्त समानताओं तथा असमानताओं का रेखांकन करने के लिए तुलनात्मक शोध- विधि का भी प्रयोग किया गया है| इसके अन्तर्गत यशपाल जी एवं गिजुभाई के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण करने के लिए शिक्षा की अवधारणा,शिक्षा के उद्देश्य,विद्यालय, शिक्षक,विद्यार्थी पाठ्यक्रम,शिक्षण-विधि तथा अनुशासन जैसे बिन्दुओं का अध्ययन किया गया है| तत्पश्चात उपर्युक्त बिन्दुओं पर यशपाल जी एवं गिजुभाई के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है ताकि उनमें अन्तर्निहित समानताएं एवं समानताएं स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो सकें|

1.7 शोध का परिसीमन

प्रस्तुत शोध अध्ययन है निम्नलिखित बिन्दुओं पर परिसीमित है -

- यशपाल जी एवं गिजुभाई बधेका बहुआयामी व्यक्तित्व के थे| समाज का कोई भी क्षेत्र, चाहे सामाजिक हो या धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक सभी बिन्दुओं पर उन्होंने अपना विचार प्रस्तुत किया है| प्रस्तुत शोध में यशपाल जी एवं गिजुभाई के शैक्षिक विचारों का ही तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है|

- चूँकि यशपाल जी एवं गिजुभाई गुजराती मूल के विचारक थे और उनके द्वारा लिखित अधिकांश पुस्तकें गुजराती भाषा में हैं, अत: विभिन्न विद्वानों द्वारा हिंदी में अनुवादित पुस्तकों का अध्ययन इस शोध में किया गया है|
- शोध अध्ययन को सीमित संसाधनों द्वारा किया जाना है| अतः प्राथमिक स्रोत के अतिरिक्त द्वितीयक स्रोतों का भी प्रयोग किया गया है|

द्वितीय अध्याय- सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

2.1 गिजुभाई बधेका से सम्बन्धित शोध अध्ययन

- **राम,(2000)** ने अपने लघु शोध गिजूभाई बधेका के बाल शिक्षा-दर्शन की वर्तमान प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में उपादेयता विषय पर यह निष्कर्ष निकाला की गिजूभाई ने बाल शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट किया तथा उन्होंने बताया कि वर्तमान प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा का केन्द्र बिन्दु बालक है अर्थात् का स्वरूप बाल केन्द्रित होना चाहिए| बालक की रुचियों एवं योग्यताओं के अनुसार ही शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए| शिक्षा का उद्देश्य बालक की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, व्यक्तिक एवं सामाजिक होना चाहिए| गिजूभाई के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को स्वतन्त्रता प्रदान करना, उनके ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का विकास खेल-विधि द्वारा शिक्षा प्रदान होना चाहिए| उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में कहा है कि पाठ्यक्रम में खेलकूद एवं हस्त कार्यों जैसे विषय वस्तु को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए| विद्यालय ऐसे स्थान पर होने चाहिए जहाँ बच्चों को अपना स्वाभाविक विकास करने के लिए उचित पर्यावरण मिले|
- **यादव (2006)** ने अपने लघु शोध 'वर्तमान परिपेक्ष में गिजूभाई के शैक्षिक विचारों की उपादेयता' के अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि गिजूभाई ने भारत में बाल-शिक्षा के क्षेत्र में एक नये आन्दोलन की शुरुआत की थी| सरकारी शालाओं पर तो इसका प्रभाव न के बराबर पड़ा क्योंकि वहाँ एक निर्धारित पाठ्यक्रम था, वही सरकारी वेतन भोगी शिक्षक थे एवं वही पुरानी घिसी-पिटी व्याख्या विधियां भी| इसके पीछे यह कारण था कि गिजुभाई को समझने वाले कुछ अधिकारी इसे चाह कर भी सरकार की अनुमति के बिना परिवर्तन नहीं कर सकते थे| दूसरी तरफ निजी शिक्षण संस्थान थे, जो गुणवत्ता के स्तर को बनाए रखने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील थे| गिजुभाई से पहले इटली की शिक्षाविद डॉक्टर मारिया माण्टेसरी एवं फ्रोबेल की शिशु शिक्षा प्रणाली के सन्दर्भ में येन-केन प्रकारेण प्राप्त की गई आधी

अधूरी जानकारी को उत्तम शिक्षा का आधार बनाया गया था| कुछ समय बाद भारत में भी शिशु शिक्षा सुधार की बयार बह चली| जिसके अगुआ थे 'वालदेवो भव' के उद्धोषक 'गिजुभाई'| चूकि गिजूभाई के शैक्षिक प्रयोग से सम्पूर्ण जगत में हलचल मच गयी, लोग शारीरिक विकास, इन्द्रिय विकास, क्रिया प्रधान पाठ्यचर्या के जादू से न बच सके| निजी शिक्षण संस्थानों ने अपने विद्यालय की दशा एवं दिशा बदलने के लिए कुछ विशेष बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित किया उसमें स्वच्छता तथा सफाई का वातावरण देखकर, शिक्षकों को छात्रों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने, शिक्षालय तो आकर्षक का केन्द्र बनाने तथा सर्वांगीण विकास के लिए विभिन्न तरह की पाठ्यपुस्तकों का प्रावधान करने में क्रियाशील हो गये| बच्चों को खेल-खेल में सिखाने तथा उनकी सृजनात्मक शक्ति के विकास के लिए भी विधिवत प्रयत्न कर दिए गये| आन्दोलन के प्रथम चरण में तो गिजूभाई के आदर्शों एवं उनकी मान्यताओं को ध्यान में रखकर बालकों की, योग्यता एवं आवश्यकता के अनुरूप शिक्षण व्यवस्था संचालित की गई|

❖ **गुप्ता, (2009)** ने 'गिजूभाई के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध अध्ययन के उपरांत यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि गिजूभाई चाहते थे कि बच्चों में दया, करुणा, त्याग और परोपकार जैसे मानवीय गुणों के विकास पर बल दिया जाना चाहिए| शिशु शिक्षा पूर्णत: बाल केन्द्रित होना आवश्यक है सम्पूर्ण शिक्षा को शिशुओं की रुचि, रुझान एवं आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिए| वर्तमान स्पर्धा, पुरस्कार आदि उत्तेजक बालक के विकास हेतु विनाशक हैं क्योंकि बालक स्वाधीनता और स्वतंत्रता चाहता है तथा उसे सिर्फ अपनी प्रगति में संलग्न रहना पसन्द है दण्ड एवं भय के बल पर अनुशासन स्थापित नहीं किया जा सकता, अनुशासन के लिए स्वक्रिया एवं स्वप्रेरणा का होना आवश्यक है| गिजूभाई का विचार था कि वर्तमान शिक्षण व्यवस्था में 'व्याख्या पद्धति' के स्थान पर 'क्रिया प्रधान एवं वार्तालाप पद्धति' का प्रयोग किया जाना चाहिए|

पूर्वान्कित शोध-अध्ययनों का विश्लेषण करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भारत में यशपाल जी के शिक्षा दर्शन के विभिन्न पहलुओं पर शोध अध्ययन भी कम हुए एवं गिजूभाई के शिक्षा दर्शन पर भी बहुत कम शोध अध्ययन हुए हैं अभी तक यशपाल जी तथा गिजूभाई बधेका के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक

अध्ययन पर नहीं हुआ है| पूर्वान्कित शोध अध्ययनों का विश्लेषण करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भारत में यशपाल जी के शिक्षा दर्शन के विभिन्न पहलुओं पर शोध अध्ययन तो हुए है, परन्तु गिजूभाई के शिक्षा-दर्शन पर बहुत कम शोध अध्ययन हुए हैं अभी तक यशपाल जी तथा गिजूभाई बधेका के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन इस आधार पर केन्द्रित है, सभी दृष्टियों से नवीन एवं समीचीन है| यह मात्र 'खोज की पुन: खोज' नहीं है अपितु शिक्षा-जगत को नयी दिशा देने वाला तथा नवीन शोध के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाला है|

2.2 गिजुभाई बधेका से सम्बन्धित समाचार, लेख

पुण्यतिथि पर विशेष: बच्चे स्कूल जाने से हीलाहवाली करने के बजाय उत्साह व उल्लास के साथ वहाँ जाएं और जीवनोपयोगी शिक्षा ग्रहण करें, इसके लिए गिजूभाई ने कई क्रान्तिकारी प्रयोग किए **महात्मा गाँधी के गुजरात में उन्हीं जैसे एक और 'तपस्वी' हुए हैं-गिजूभाई बधेका 15 नवम्बर, 1885 को सौराष्ट्र के चीतल में उनका जन्म हुआ तो मां-बाप ने नाम रखा था-गिरिजा शंकर भगमानजी|**

अभी मैट्रिक परीक्षा ही पास की थी कि रोजी-रोटी की फिक्र उन्हें अफ्रीका खींच ले गई| तीन साल बाद वहां से लौटे तो जानें कैसे उन पर अधूरी रह गई अपनी शिक्षा पूरी करने की धुन सवार हो गई| फिर तो उन्होंने मुम्बई जाकर, और तो और, कानून तक की पढ़ाई की| यह और बात है कि लेकिन महात्मा गाँधी की ही तरह वकालत की पारी को लम्बी नहीं खींच सके और सक्रियताओं का नया क्षेत्र चुन लिया, जो बच्चों की शिक्षा का था| दरअसल, उन दिनों देश में बच्चों की शिक्षा के प्रति जो उपदेशात्मक, अवैज्ञानिक, अव्यावहारिक व दकियानूस रवैया अपनाया जाता था और जिस कारण अपनी किश्तों में हुई पढ़ाई के दौरान खुद गिजूभाई को भी नाना प्रकार की विडम्बनाएं झेलनी पड़ी थीं, उससे वे अन्दर-बाहर दोनों बेहद आहत महसूस करते और चाहते थे कि जिन स्थितियों ने उन्हें इतना सताया, वे किसी और बच्चे को किंचित भी न सता सकें| इसके लिए उन्होंने उनके उन्मूलन की दिशा में प्रयत्न शुरू किए तो उनमें ऐसे रम गये कि अनेक बच्चे उन्हें 'मूंछों वाली मां' कहने लगे, जबकि बड़े 'बच्चों का गाँधी' या 'बाल शिक्षा का सूत्रधार' जानकारों के अनुसार 1920 से लेकर 1939 तक उन्होंने बच्चों की शिक्षा का परीक्षा के साथ चला आ रहा पुराना गठजोड़ खत्म

करने और उसे अक्षरों के साथ दृश्य-श्रव्य माध्यमों से जोड़ने के लिए ठीक वैसी ही तपस्या व संघर्ष किये जैसे महात्मा गाँधी ने देश की स्वतंत्रता के लिए| इसीलिए कई जानकार कहते हैं कि स्कूलों में स्नेह और स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए बच्चों का शैक्षिक स्वतंत्रता संगाम तो सच्चे अर्थों में गिजूभाई बधेका ने ही लड़ा| बताते हैं कि उनके चित्त में बच्चों का यह शैक्षिक स्वतंत्रता संग्राम शुरू करने का विचार तब आया, जब अपने बेटे के दाखिले के लिए उपयुक्त विद्यालय की उनकी तलाश किसी मंजिल तक नहीं पहुँच सकी| यानी एक भी विद्यालय उनकी कसौटी पर खरा नहीं उतर पाया| वे अपने खुद के अनुभव से जानते थे कि सख्त शिक्षकों व कठोर दण्ड की व्यवस्था के कारण विद्यालयों के प्रति बच्चों में फैले भय व अरुचि को दूर किए बिना बाल शिक्षा का उद्धार होने वाला नहीं है| इसलिए उन्होंने इसी बिन्दु पर सबसे ज्यादा जोर दिया| बच्चे स्कूल जाने से हीलाहवाली करने के बजाय उत्साह व उल्लास के साथ वहाँ जायें और जीवनोपयोगी शिक्षा ग्रहण करें, इसके लिए गिजूभाई ने कई क्रांतिकारी प्रयोग किए| इन्हीं प्रयोगों में से एक था, मारिया माण्टेसरी की शिक्षा पद्धति को ग्रामीण भारत के सीमित आर्थिक साधनों के अनुरूप ढालकर इस्तेमाल में लाना| इस अनूठी पहल के तहत उन्होंने 1920 में भावनगर में दक्षिणामूर्ति बालमन्दिर नाम से जो पूर्व प्राथमिक विद्यालय यानी नर्सरी स्कूल खोला, उसमें पहली बार दो ढाई वर्ष के बच्चों के स्कूल जाने का रास्ता खुला| इससे पहले उन्हें छह सात साल के होने पर स्कूल भेजा जाता था|

प्रसंगवश, दक्षिणामूर्ति बाल-मन्दिर में उबाऊ पाठ्यपुस्तकों और तोतारटन्त से पूरा परहेज बरता जाता था| बच्चों में सीखने की ललक पैदा कर क्रमिक विकास लाने के लक्ष्य को समर्पित इस विद्यालय में कहानियों, लोककथाओं, नाटकों, गायन, नृत्य और चित्रों की मार्फत उन्हें इस तरह शिक्षित करने पर जोर था कि वे खेल-खेल में ही बहुत कुछ सीख जायें और सीखने की परम्परा से चली आ रही त्रासद प्रक्रिया से उनका साक्षात्कार न हो| यह जानना दिलचस्प है कि बच्चों को विचारों, कल्पनाओं और संस्कारों के स्तर पर मजबूत बनाने के उद्देश्य से इस स्कूल में जिन नाटकों को मंचित किया जाता था, उनमें अन्य कलाकारों के अलावा गिजूभाई खुद भी अभिनय करते थे| इतना ही नहीं, बाल कलाकारों को उनके संवाद रटाये नहीं समझाये जाते थे और वे उनमें अपनी रचनात्मक मेधा के प्रयोग के लिए आजाद थे| अपनी धुन के धनी गिजूभाई शिक्षा को उपदेशात्मक रूप देने के कट्टर विरोधी थे| अपने इसी विचार के आधार पर उन्होंने बच्चों

को नैतिक शिक्षा देने वाली महात्मा गाँधी की बालपोथी को अनुपयुक्त पाया तो उसकी आलोचना से भी नहीं चूके| बाद में उनकी आलोचना को सही ठहराते हुए गाँधी जी ने स्वयं इस बालपोथी के प्रकाशन व वितरण का काम रोक दिया| गिजूभाई भाषा व व्याकरण को अलग-अलग नहीं बल्कि एक साथ पढ़ाने के हिमायती थे और शिक्षा के दृश्य-श्रव्य माध्यमों पर अक्षरों के गैरजरूरी वर्चस्व से नाराज होते थे| दक्षिणमूर्ति बाल-मन्दिर के संचालन के क्रम में जल्दी ही उन्होंने समझ लिया था कि जैसी शिक्षा वे बच्चों को देना चाहते हैं, उसे उन तक पहुचाना प्रशिक्षित शिक्षकों की पर्याप्त संख्या के अभाव में सम्भव नहीं है| इसलिए 1925 में उन्होंने दक्षिणामूर्ति अध्यापक मन्दिर भी स्थापित किया, जिसमें छह सौ से ज्यादा अध्यापकों को प्रशिक्षित कर उनकी सेवाओं का सदुपयोग सुनिश्चित किया गया| बच्चों के लिए जरूरी साहित्य के सृजन का काम पिछड़े नहीं, इसके लिए गिजूभाई ने खुद भी बड़ा सृजनात्मक योगदान दिया| उन्होंने बाल कहानियां व बालगीत तो रचे ही, यात्राओं व साहसिक अभियानों पर भी पुस्तकें लिखीं| उनकी लिखी पुस्तकों की कुल संख्या एक सौ बताई जाती है. उनकी लम्बी कहानी 'दिवास्वप्न' को बालशिक्षा के नए रूप के संविधान और बाल साहित्य के सिरमौर जैसा आदर प्राप्त है| इसमें वे व्यवस्था देते हैं कि बच्चों के विद्यालयों को बालश्रम शोषण शिविर जैसा बनाने से बाज आना और शारीरिक प्रताड़ना से मुक्त कराना चाहिए|

जिस साल उन्होंने दक्षिणमूर्ति अध्यापक मन्दिर स्थापित किया, उसी साल शीरामती ताराबाई मोदक के साथ मिलकर गुजराती में 'शिक्षण पत्रिका' का प्रकाशन किया| शिक्षा व्यवस्था में आमूल चूल बदलाव के पक्ष में चेतना पैदा करने और जन सामान्य को अपनी शिक्षा पद्धति की जानकारी देने के लिए उन्होंने भावनगर और अहमदाबाद में दो सम्मेलन भी आयोजित किए| 1936 में एक दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम में कुछ सहयोगियों से मतभेदों के कारण उन्हें दक्षिणमूर्ति संस्था छोडकर राजकोट में एक अध्यापक मन्दिर बनाना पड़ा लेकिन उम्र ने उनको उसे फलता-फूलता देखने का अवसर नहीं दिया| 23 जून, 1939 को वे मृत्यु से अपना युद्ध हार गए और हमने एक अपनी तरह का अनूठा बालशिक्षा शास्त्री खो दिया *(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं और फ़ैज़ाबाद में रहते हैं)*|

गिजुभाई बधेका (15 नवम्बर 1885-23 जून 1939)) गुजराती भाषा के लेखक और महान शिक्षाशास्त्री थे। उनका पूरा नाम गिरिजाशंकर भगवानजी बधेका था। अपने प्रयोगों और अनुभव के आधार पर उन्होंने निश्चय

किया था कि बच्चों के सही विकास के लिए, उन्हें देश का उत्तम नागरिक बनाने के लिए, किस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए और किस ढंग से। इसी ध्येय को सामने रखकर उन्होंने बहुत-सी बालोपयोगी कहानियां लिखीं। ये कहानियां गुजराती दस पुस्तकों में प्रकाशित हुई हैं। इन्हीं कहानियां का हिन्दी अनुवाद सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली ने पांच पुस्तकों में प्रकाशित किया है। बच्चे इन कहानियों को चाव से पढ़ें, उन्हें पढ़ते या सुनते समय, उनमें लीन हो जाएं, इस बात का उन्होंने पूरा ध्यान रखा। सम्भव-असम्भव, स्वाभाविक-अस्वाभाविक, इसकी चिन्ता उन्होंने नहीं की। यही कारण है कि इन कहानियों की बहुत-सी बातें अनहोनी-सी लगती हैं, पर बच्चों के लिए तो कहानियों में रस प्रधान होता है, कुतूहल महत्व रखता है और ये दोनों ही चीजें इन कहानियों में भरपूर हैं।

2.3 यशपाल जी से सम्बन्धित शोध अध्ययन

बस्ते का बोझ : यशपाल समिति की सिफारिशें (By Rajesh Utsahi,25 जुलाई 2017) जाने-माने वैज्ञानिक और शिक्षाविद प्रोफेसर यशपाल का 24 जुलाई,2017 को नब्बे साल की आयु में निधन हो गया। वे अपने तमाम अन्य कामों के अलावा स्कूलों में बच्चों के बस्ते के बोझ पर बनी कमेटी की अध्यक्षता करने के लिए जाने जाते हैं। 1992 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति बनाई। इस समिति में देश भर के आठ शिक्षाविदों को शामिल किया गया। इस समिति के अध्यक्ष प्रोफेसर यशपाल को बनाया गया। समिति को इस बात पर विचार करना था कि ‘शिक्षा के सभी स्तरों पर, विशेषकर छोटी कक्षा के विद्यार्थियों पर, पढ़ाई के दौरान पड़ने वाले बोझ को कैसे कम किया जाए। साथ ही शिक्षा की गुणवत्ता में कैसे सुधार लाया जाय।

समिति ने देश भर में नवाचारों में लगे स्वैच्छिक संगठनों, पाठ्यक्रम बनाने वालों पाठ्यक्रम लिखने वालों, निजी प्रकाशकों आदि से बातचीत की। इसके अलावा अभिभावकों, शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा शिक्षा में रुचि रखने वाले अन्य व्यक्तियों से विभिन्न माध्यमों से सम्पर्क किया गया।

प्राप्त मत, विचार, सुझाव आदि के आधार पर समिति ने जुलाई, 1993 में सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी। समिति ने शिक्षा की तमाम मुश्किलों की जाँच-परख करते हुए लिखा कि, 'बच्चों के लिए स्कूली बस्ते के बोझ से ज्यादा बुरा है न समझ पाने का बोझ।'

स्कूलों के उस समय के माहौल और मुश्किलों का बड़े पैमाने पर विश्लेषण करते हुए 'यशपाल समिति' ने महत्वपूर्ण सिफारिशें दी थीं। उस समय सरकार ने समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था, साथ ही उन्हें लागू करने की इच्छा व्यक्त की थी।

बाद में 2005 में प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में ही 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' बनाने के लिए एक राष्ट्रीय संचालन समिति का गठन किया गया। इस समिति में 38 सदस्य थे। इस समिति ने पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाते समय प्रोफेसर यशपाल की सिफारिशों को ध्यान में रखा। पाठ्यचर्चा क्षेत्र,व्यवस्थागत सुधार तथा राष्ट्रीय चिन्ताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न विषयों पर 21 आधार पत्रों की रचना की। फिलहाल यही रूपरेखा हमारी स्कूली शिक्षा की मार्गदर्शक बनी हुई है।

1994 में 'चकमक' के सितम्बर अंक में 'पढ़ाई का बोझ' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख में 'यशपाल समिति' की सिफारिशों का सार दिया गया था। लेख की पीडीएफ यहाँ संलग्न है। आप सिफारिशें उसमें पढ़ सकते हैं।

मशहूर शिक्षाविद और वैज्ञानिक यशपाल का आज नोयडा के अस्पताल में निधन हो गया। विज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में इनका योगदान अहम है। वे काफी दिनों से बीमार चल रहे थे। 90 साल की उम्र में उन्होंने अन्तिम सांस ली।

दुखद:मशहूर वैज्ञानिक और पद्म विभूषण से सम्मानित प्रोफेसर यशपाल का निधन

आईए जानते हैं उनके जीवन की कुछ अहम बातें

टीवी पर कुछ साल पहले आने वाले विज्ञान के कार्यक्रम में वे अपने विचार रखते थे। दूरदर्शन पर प्रसारित हो चुके मशहूर विज्ञान आधारित कार्यक्रम टर्निंग प्वाइंट के संचालक रह चुके हैं। साल 1976 में विज्ञान और अन्तरिक्ष तकनीक में महत्वपूर्ण योगदान देने के लिए उन्हें पद्मभूषण और साल 2013 में पद्मविभूषण सम्मान से नवाजा जा चुका है| 1983 से 1984 तक वह योजना आयोग के मुख्य सलाहकार रहे हैं। 1986 से 1991

तक वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के अध्यक्ष थे। साल 1972 में जब भारत सरकार ने पहली बार अन्तरिक्ष विभाग का गठन किया था तो अहमदाबाद नए गठित किए गए स्पेस एप्लिकेशन सेन्टर का डायरेक्टर की जिम्मेदारी उन्हें सौंपी गई। 1983-84 में वे प्लानिंग कमिशन के चीफ कंसल्टेंट के पद पर भी बने रहे। वर्ष 2007-2012 तक वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर के पद पर अपनी सेवा दी। साल 2009 में विज्ञान को बढ़ावा देने और उसे लोकप्रिय बनाने में अहम भूमिका निभाने की वजह से उन्हें यूनेस्को के कलिंग सम्मान से सम्मानित किया गया।

2.4 यशपाल जी से सम्बन्धित समाचार,लेख इत्यादि

जीवन से जुड़े शिक्षा और विज्ञान

प्रोफेसर यशपाल शिक्षा और विज्ञान के बारे में ढेर सारी बातें की जा सकती हैं। क्या शिक्षा और विज्ञान को अलग-अलग देखा जा सकता है या फिर इन्हें विज्ञान में शिक्षा या शिक्षा में विज्ञान के रूप में देखा जाए? मैं समझता हूँ कि हमारे पूर्ववर्ती मानते थे कि शिक्षा में, जिसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी शामिल हैं, व्यापक सुधार हो सकता है, यदि इसकी संरचना में प्रौद्योगिकी को जोड़ा जाए। इसके अलावा प्रशिक्षण या अध्यापन में सुधार किया जाए, तो हमारे शिक्षकों और विद्यार्थियों की दुनिया भर की जानकारियों तक पहुँच हो जाएगी। इससे हम दुनिया की महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर हो सकेंगे। तकरीबन पच्चीस वर्षों से मैं सूचना प्रौद्योगिकी को लेकर काफी उत्साहित हूँ। मेरा यह उत्साह सिर्फ बाहर से नहीं है। मैंने शिक्षा और संचार के तीनों केंद्रीय पहलूओं प्रौद्योगिकी, प्रणाली और प्रशिक्षण की दिशा में काम किया है। प्रणाली और प्रशिक्षण को लेकर मैंने काफी काम किया है। इसमें काफी सफलताएं मिली हैं, मगर सामाजिक दबाव और निहित स्वार्थों के कारण कुछ नाकामियां भी मिली हैं। मैं आधुनिक प्रौद्योगिकी या तकनीक का विरोधी नहीं हूँ, मगर मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि हम न सिर्फ आयातित प्रौद्योगिकी, बल्कि बाहरी जरूरतों के लिए तैयार किए गए पाठ्यक्रम के सहारे आगे बढ़ेंगे, तो हम अपने समाज को काफी नुकसान पहुँचाएंगे। हमारे टेलीविजन पर आने वाले चमकदार विज्ञापनों को देखकर मुझे हैरत होती है। ये सब अंग्रेजी में होते हैं। हमारे जड़हीन मध्य वर्ग की यह जड़हीन भाषा है। इस पर भी हैरत नहीं होती कि अनेक सम्पन्न निजी स्कूल (जिन्हें पता नहीं क्यों

हमारे देश में आज भी पब्लिक स्कूल कहा जाता है) इसी उपक्रम को आगे बढ़ा रहे हैं, क्योंकि अभिभावकों को भी विदेशी, पाश्चात्य और वैश्विक चीजें आकर्षित करती हैं और श्रेष्ठ लगती हैं। सूचना की उर्वरता बढ़ सकती है, बशर्ते कि हम इसे अनुभव के साथ महसूस करें। मानसून की पहली बारिश, आम के मौसम में उठने वाली भीनी खुशबू, लीची, चीकू, तरबूज, खुबानी और इतनी सारी चीजें हैं जो गर्मियों को न केवल सहनीय बनाती हैं, बल्कि इनका हम इंतजार भी करते हैं। इसके बजाय हम अप्रैल महीने के 42 डिग्री तापमान के बारे में बात करते हैं, हम पतझड़ के बारे में बात करते हैं, जब कई जगहों पर अधिकांश पेड़ों से सारे पत्ते गिर जाते हैं, उसके बाद पेड़ों पर नये रंगीन फूल खिलते हैं। ऐसा लगता है कि इन सबका शिक्षा से सीधा सम्बन्ध नहीं है, जबकि ऐसा नहीं है। बच्चों के मस्तिष्क को जीवन से जुड़ी चीजों से अलग करने के दो परिणाम हो सकते हैं। पहला यह कि अपने आसपास की दुनिया को देखने, उसे समझने और अपने ढंग से उसकी व्याख्या करने की जरूरत नहीं है, और दूसरा यह कि हमारा जीवन तुच्छ है, जिसमें से विज्ञान और प्रौद्योगिकी के महत्वपूर्ण समाधान नहीं निकल सकते। ये दोनों ही स्थितियां घातक हैं। जीवन से कटी शिक्षा और विज्ञान, दोनों ही व्यर्थ हैं। हमारी औपचारिक शिक्षा प्रणाली की सबसे बड़ी समस्या यही है कि यह अलगाव ही हमारी विशेषता बन गई है। हम यह मानते हैं कि कोई चीज यदि किसी दूर के औद्योगिक देश से आई है, तो वह श्रेष्ठ ही होगी। जबकि हमारे अपने देश में कुछ शानदार पहल की गई है। आखिर हम एकलव्य जैसे जमीनी संगठनों से कुछ क्यों नहीं सीख सकते?

2.5-निष्कर्ष

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण में गिजूभाई बधेका ने बताया कि बाल शिक्षा-दर्शन की वर्तमान प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में उपादेयता विषय पर यह निष्कर्ष निकाला की गिजूभाई ने बाल शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट किया तथा उन्होंने बताया कि वर्तमान प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा का केन्द्र बिन्दु बालक है अर्थात् का स्वरूप बाल केन्द्रित होना चाहिए| बालक की रुचियों एवं योग्यताओं के अनुसार ही शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए| शिक्षा का उद्देश्य बालक की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, व्यक्तिक एवं सामाजिक होना चाहिए| गिजूभाई के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को स्वतन्त्रता प्रदान करना, उनके

ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का विकास खेल-विधि द्वारा शिक्षा प्रदान होना चाहिए| उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में कहा है कि पाठ्यक्रम में खेलकूद एवं हस्त कार्यों जैसे विषय वस्तु को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए| विद्यालय ऐसे स्थान पर होने चाहिए जहाँ बच्चों को अपना स्वाभाविक विकास करने के लिए उचित पर्यावरण मिले| गिजूभाई के शैक्षिक प्रयोग से सम्पूर्ण जगत में हलचल मच गयी, लोग शारीरिक विकास, इन्द्रिय विकास, क्रिया प्रधान पाठ्यचर्या के जादू से न बच सके| निजी शिक्षण संस्थानों ने अपने विद्यालय की दशा एवं दिशा बदलने के लिए कुछ विशेष बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित किया उसमें स्वच्छता तथा सफाई का वातावरण देखकर, शिक्षकों को छात्रों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने, शिक्षालय तो आकर्षक का केन्द्र बनाने तथा सर्वांगीण विकास के लिए विभिन्न तरह की पाठ्यपुस्तकों का प्रावधान करने में क्रियाशील हो गये| बच्चों को खेल-खेल में सिखाने तथा उनकी सृजनात्मक शक्ति के विकास के लिए भी विधिवत प्रयत्न कर दिए गये| आन्दोलन के प्रथम चरण में तो गिजूभाई के आदर्शों एवं उनकी मान्यताओं को ध्यान में रखकर बालकों की, योग्यता एवं आवश्यकता के अनुरूप शिक्षण व्यवस्था संचालित की गई| प्रसंगवश, दक्षिणामूर्ति बाल-मन्दिर में उबाऊ पाठ्यपुस्तकों और तोतारटन्त से पूरा परहेज बरता जाता था| बच्चों में सीखने की ललक पैदा कर क्रमिक विकास लाने के लक्ष्य को समर्पित इस विद्यालय में कहानियों, लोककथाओं, नाटकों, गायन, नृत्य और चित्रों की मार्फत उन्हें इस तरह शिक्षित करने पर जोर था कि वे खेल-खेल में ही बहुत कुछ सीख जायें और सीखने की परम्परा से चली आ रही त्रासद प्रक्रिया से उनका साक्षात्कार न हो|

यह जानना दिलचस्प है कि बच्चों को विचारों, कल्पनाओं और संस्कारों के स्तर पर मजबूत बनाने के उद्देश्य से इस स्कूल में जिन नाटकों को मंचित किया जाता था, उनमें अन्य कलाकारों के अलावा गिजूभाई खुद भी अभिनय करते थे| इतना ही नहीं, बाल कलाकारों को उनके संवाद रटाये नहीं समझाये जाते थे और वे उनमें अपनी रचनात्मक मेधा के प्रयोग के लिए आजाद थे| अपनी धुन के धनी गिजूभाई शिक्षा को उपदेशात्मक रूप देने के कट्टर विरोधी थे| अपने इसी विचार के आधार पर उन्होंने बच्चों को नैतिक शिक्षा देने वाली महात्मा गाँधी की बालपोथी को अनुपयुक्त पाया तो उसकी आलोचना से भी नहीं चूके| बाद में उनकी आलोचना को सही ठहराते हुए गाँधी जी ने स्वयं इस बालपोथी के प्रकाशन व वितरण का काम रोक दिया|

गिजूभाई भाषा व व्याकरण को अलग-अलग नहीं बल्कि एक साथ पढ़ाने के हिमायती थे और शिक्षा के दृश्य-श्रव्य माध्यमों पर अक्षरों के गैरजरूरी वर्चस्व से नाराज होते थे|

प्रोफेसर यशपाल जी स्कूल में बच्चों के बस्ते के बोझ पीआर बनी कमेंटी की के अध्यक्ष थे 1992 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति बनाई। इस समिति में देश भर के आठ शिक्षाविदों को शामिल किया गया। इस समिति के अध्यक्ष प्रोफेसर यशपाल को बनाया गया। समिति को इस बात पर विचार करना था कि 'शिक्षा के सभी स्तरों पर, विशेषकर छोटी कक्षा के विद्यार्थियों पर, पढ़ाई के दौरान पड़ने वाले बोझ को कैसे कम किया जाए। साथ ही शिक्षा की गुणवत्ता में कैसे सुधार लाया जाय। समिति ने देश भर में नवाचारों में लगे स्वैच्छिक संगठनों, पाठ्यक्रम बनाने वालों पाठ्यक्रम लिखने वालों, निजी प्रकाशकों आदि से बातचीत की। इसके अलावा अभिभावकों, शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा शिक्षा में रुचि रखने वाले अन्य व्यक्तियों से विभिन्न माध्यमों से सम्पर्क किया गया। प्राप्त मत, विचार, सुझाव आदि के आधार पर समिति ने जुलाई, 1993 में सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी। समिति ने शिक्षा की तमाम मुश्किलों की जाँच-परख करते हुए लिखा कि, 'बच्चों के लिए स्कूली बस्ते के बोझ से ज्यादा बुरा है न समझ पाने का बोझ। बाद में 2005 में प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में ही 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' बनाने के लिए एक राष्ट्रीय संचालन समिति का गठन किया गया। इस समिति में 38 सदस्य थे। इस समिति ने पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाते समय प्रोफेसर यशपाल की सिफारिशों को ध्यान में रखा। पाठ्यचर्चा क्षेत्र, व्यवस्थागत सुधार तथा राष्ट्रीय चिन्ताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न विषयों पर 21 आधार पत्रों की रचना की। फिलहाल यही रूपरेखा हमारी स्कूली शिक्षा की मार्गदर्शक बनी हुई है।

तृतीय अध्याय

गिजुभाई बधेका का जीवन दर्शन एवं शैक्षिक विचार

3.1 गिजुभाई बधेका का जीवन परिचय

जीवन परिचय:-गिजुभाई बधेका का जन्म चित्तल, सौराष्ट्र (गुजरात) में 15 नवम्बर,1885 में हुआ था| उनका पूरा नाम था गिरिजाशंकर भगवान जी बधेका| इस पूरे नाम की अपेक्षा लोग उन्हें गिजुभाई कहकर पुकारते थे| 1897 में उनका प्रथम विवाह स्वा०हरिबेन के साथ हुआ जबकि 1906 में श्रीमती जड़ीबेन के साथ द्वितीय विवाह हुआ| 1907 में वे पूर्वी अफ्रीका चले गये तथा 1909 में वापस भारत आ गये| 1910 में उन्होंने बम्बई में कानून की पढ़ाई आरम्भ की तथा 1913 में वे बढ़वाण कैम्प में हाई कोर्ट लीडर हो गये| वकालत में वे पूरी तन्मयता के साथ केस का बारीकी से अध्ययन कर के मुकदमे में जिरह करते थे| परन्तु वकालत में उनका मन अधिक दिन तक न लग सका| उस दौर में राष्ट्रीय शिक्षा व राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए देश भर में अनेक संस्थाएं जन्म ले रही थी| भावनगर गुजरात में भी एक ऐसी ही संस्था थी जिसका नाम था दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन| मोटा भाई के नाम से विख्यात हरगोविंद भाई भाव नगर के स्टेशन मास्टर थे| गिजूभाई उनके पास रहकर अध्ययन करते रहे मोटा भाई दक्षिणामूर्ति भवन के संस्थापकों में से थे| बाद में इन्हीं के आह्वान पर गिजुभाई वकालत छोड़ कर शिक्षण की ओर उन्मुख हुए| शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण करने के पश्चात उनकी अदालत अब परिवार व विद्यालय बन गये और उन्होंने उन अबोध बालकों की वकालत करने का बीड़ा उठाया जो अपने माता-पिता व शिक्षकों की नासमझी के कारण उनकी डांट-डपट व मारपीट का शिकार बन रहे थे| वे इसे स्वयं स्वीकार करते हुए कहते हैं यदि मैंने अपने वकालत के पट्टे को बहाल रखा होता तो कदाचित आज किसी न्यायाधीश की कचहरी में मैं अपने एकाध दोषी या निर्दोष मुवक्किल का केस लड़ रहा होता,परन्तु डॉ माण्टेसरी की प्रभावपूर्ण रचनाओं से मेरे जीवन में परिवर्तन आया और मैं सौभाग्यशाली हूँ कि आज आपके समक्ष निर्दोष बालकों की वकालत करने के लिए खड़ा हूँ|

1915 में वे श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन के कानूनी सलाहकार बन गये तथा 1916 में दक्षिणामूर्ति विद्यालय भवन के आजीवन सदस्य बने| उस समय वे केवल 31 वर्ष के थे| इस संस्था के द्वारा एक बाल भवन चलाया जाता था जिसका नाम था विनय भवन| इस विनय भवन के आचार्य के रूप में गिजुभाई ने 4 वर्ष तक कार्य किया| 1920 में उन्होंने 'बाल मन्दिर' की स्थापना की तथा वकालत छोड़कर पूरी तरह बाल शिक्षा के लिए समर्पित हो गए और इस क्षेत्र में उन्होंने नये-नये प्रयोग किये। बाल शिक्षा के प्रति उनके इस लगाव का कारण मनोवैज्ञानिक था| उन्होंने अपने बचपन में जिस प्रकार शिक्षा प्राप्त की थी उसका अनुभव बहुत यातनापूर्ण था| उन्हें अपने बचपन में शिक्षा प्राप्ति के दौरान डांट-डपट तथा मारपीट सहन करनी पड़ी| इन्हीं कटु अनुभवों ने उन्हें बाल शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा दी| गिजूभाई की मान्यता थी कि बच्चों को कठोर अनुशासन में रखकर अच्छी तरह शिक्षित नहीं किया जा सकता| यदि उन्हें पूरी स्वतंत्रता देकर तथा उनके साथ दुलार भरा व्यवहार कर उनको शिक्षा दी जाए तो उनके व्यक्तित्व का सही दिशा में विकास हो सकता है। गिजुभाई ने माण्टेसरी शिक्षा पद्धति का गहन अध्ययन किया तथा इसके सिद्धांतों का भारतीय परिस्थिति के अनुकूल रूपान्तरण किया| इसके लिए भावनगर की दक्षिणामूर्ति को गिजूभाई ने अपनी कार्य स्थली बनाया तथा दक्षिणामूर्ति बाल-मन्दिर को अपनी शैक्षणिक प्रयोगशाला बनाया| 1916 से 1936 के बीच उन्होंने अधिकांश समय बच्चों के सानिध्य में उन्हें शिक्षा देते हुए बिताया| उन्होंने शिक्षा के प्रति अपनी गहरी निष्ठा, लगन तथा कर्मठता से अपने शैक्षिक विचारों को साकार करने का प्रयास किया| उन्होंने शाला को बच्चों के लिए एक ऐसे स्थल में बदल दिया जहाँ वे सारे कष्ट भूलकर प्रेम और खुशी के साथ मुक्त वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर सकते थे| उन्होंने नई-नई शैक्षिक गतिविधियों का सूत्रपात किया जो बच्चे का सम्यक विकास कर सकती थीं| वे बच्चों से निरन्तर संवाद करते, उन्हें नई-नई प्रेरणाएं देते तथा प्रेम के साथ उनके कोमल हृदय को जीतकर उसमें अपेक्षित संस्कार अंकुरित करने योग्य बनाते थे। गिजूभाई का दक्षिणामूर्ति बाल-मन्दिर बच्चों के सम्यक इन्द्रिय विकास, शान्ति की क्रीड़ा, शैक्षिक भ्रमण, शारीरिक कार्य, कथा कहानी श्रवण जैसी प्रवृत्तियों का केन्द्र था जिसमें बच्चे हंसते खेलते मन वांछित गतिविधियों में भाग लेते हुए शिक्षा प्राप्त करते थे| गिजुभाई द्वारा भावनगर में तख्तेश्वर मन्दिर के पास टेकड़ी पर स्थापित बाल मन्दिर का उद्घाटन 1922 में कस्तूरबा गाँधी के कर कमलों से हुआ था| उन्होंने 1925 में भावनगर में प्रथम

माण्टेसरी सम्मेलन आयोजित किया जिसके साथ उन्होंने पहला अध्यापन मन्दिर भी स्थापित किया| द्वितीय माण्टेसरी सम्मेलन 1928 में गिजुभाई की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

गिजूभाई ने 1930 में गाँधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेते हुए शरणार्थी शिविरों में निवास किया तथा वहाँ भी अक्षरज्ञान योजना आरम्भ की| सूरत में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए वरना परिषद का गठन किया| 1937 में गिजुभाई ने श्री दक्षिणामूर्ति विद्यालय भवन से स्वयं को मुक्त कर लिया| 1937 में ही उन्हें गुजरात के लोगों ने सम्मानित किया| एक सम्मान समारोह में गिजुभाई के ये उद्गार हृदय की अंतरतम भावनाओं को व्यक्त करते हैं- “आज मुझे जो यह सम्मान दिया जा रहा है,इसके लिए मैं पहला उपकार किसका मानूं? अगर मेरे मित्र गोपालदास दरबार द्वारा प्रदत्त माण्टेसरी -साहित्य से मेरे भीतर चेतना का संचार ना हुआ तो? अगर मैंने अपने चारों ओर के बालकों को माता-पिताओं द्वारा तिरस्कृत ना देखा तो? बचपन में मैं जिन पाठशाला में पढ़ता था उन जगहों और शिक्षकों की मलीनता को मैंने इस्मरण न रखा होता तो? और नित हमेशा मेरे साथ बसने वाले मेरे बच्चों की मूक वाणी से मुझे ये स्वर न सुनाई दिये होते कि ‘बापू हम भी इंसान हैं, हमें देखो, हमारी बातें सुनो, हमें इंसाफ दो, हमें इज्जत दो, हमें माता पिता के अज्ञान और मिथ्या प्रेम से बचाओ, हमारी आजादी के लिए लड़ाई लड़ो|’ तो? और श्री दक्षिणामूर्ति नामक संस्था ने (भावनगर में) बाल मन्दिर शुरू करके मुझे बाल हृदय के समीप आने और उसमें माण्टेसरी के सिद्धांतों का साक्षात्कार करने का अवसर प्रदान ना किया होता,तो? और अगर सम्पूर्ण गुजरात बालकों की आन्तरिक इच्छा ने मेरे मन में उदित होकर मुझे माण्टेसरी का झण्डा फहराने की भगवान द्वारा प्रेरणा ना दी होती, तो? तो मैं किसका उपकार मानता? और इस उपकार को स्वीकार करने का अवसर जिसने मुझे दिया,उस शारदा-मन्दिर का भी में क्यो कर उपकार मानता?”

1938 में उन्होंने राजकोट में अध्यापन मन्दिर स्थापित किया जो शिक्षा के क्षेत्र में उनका अंतिम अवदान था।

गिजूभाई का समस्त जीवन बाल शिक्षा के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग करते हुए व्यतीत हुआ| वे बच्चों के साथ स्वयं को सदैव ताजा महसूस करते थे| शिक्षा के क्षेत्र में अनवरत व्यस्तता गिजुभाई की चरम उपलब्धि थी| वे विविध विषयों के शिक्षण के साथ बच्चों में सत्य,अहिंसा,करुणा सहयोग सहकार जैसे मानवीय गुणों के विकास पर अधिक बल देते थे तथा शिक्षा के क्षेत्र में उन गतिविधियों को अपरिहार्य मानते थे जिनसे इन गुणों

का विकास हो। गिजुभाई ने शिक्षा में जो प्रयोग किए उन्हें वे साथ ही साथ लिपिबद्ध भी करते थे इस तरह उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी विपुल साहित्य की रचना की| बे बाल साहित्य के अद्भुत रचयिता थे| उन्होंने बच्चों,शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए अलग-अलग पुस्तकें लिखी हैं| उन्होंने लम्बे अरसे तक 'शिक्षण पत्रिका' का सम्पादन किया जिसमें उन्होंने नियमित रूप से लिखा| इस पत्रिका में भी बच्चों, अभिभावकों तथा शिक्षकों के लिए अलग-अलग सामग्री होती थी| गिजुभाई ने गुजराती में 200 से अधिक बाल पुस्तकों की रचना की जिसकी गुजरात में बहुत लोकप्रियता थी| इन कृतियों का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है| शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के लिए गिजूभाई का साहित्य बहुत मूल्यवान है| गिजूभाई का जीवन बालकों को समर्पित एक शिक्षक का तथा एक सृजनात्मक लेखक का आदर्श जीवन था।

तत्कालीन शैक्षिक स्थिति- सन 1835 में मैकाले का विवरण पत्र प्रस्तुत हो चुका था| 1854 के वुड घोषणा पत्र ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का ढांचा स्वीकृत कर दिया था| इन लोगों को वा ब्रिटिश शासकों को विश्वास था कि वे करोड़ों भारतीयों के दिल दिमाग को अंग्रेजी शिक्षा द्वारा पूरी तरह बदल देंगे| मैकाले ने गर्व पूर्वक अपने पिता को लिखे पत्र में घोषणा की थी- "मुझे पक्का विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी योजना को आगे बढ़ाया गया तो 30 वर्ष बाद बंगाल के सम्भ्रान्त वर्गों में एक भी मूर्तिपूजक शेष नहीं रहेगा और यह परिणाम बिना किसी धर्मान्तरण के बिना उनकी धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप किए ही निकल सकेगा|"

अलेक्जेंडर व डफ ने 1835 में प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था- "जब रोमन लोग किसी नये प्रदेश को जीतते थे तो वे तुरन्त उसका रोमनी करण करने में जुट जाते थे अर्थात् वे अपनी अधिक विकसित भाषा और साहित्य के प्रति रुचि जगाकर विजेता लोगों के संगीत, रोमांस, इतिहास, चिंतन और भावनाओं, यहाँ तक कल्पनाओं को भी रोमन शैली में प्रवाहित होने की स्थिति उत्पन्न कर देते थे, जिससे रोमन हितों का पोषण व सुरक्षा होती थी| क्या रोम इसमें सफल नहीं हुआ|"

अंग्रेजों को सांस्कृतिक विजय की यह तमन्ना आंशिक रूप से ही पूरी हो रही थी| भारत में भारतीयों के मन में इस शिक्षा के प्रति आक्रोश था| श्रीमती एनी बेसेंट ने राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन को गति प्रदान की| स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, श्री अरविन्द, लाजपत राय, बिपिनचन्द्र पाल, लोकमान तिलक तथा महात्मा गाँधी आदि ने राष्ट्रीय शिक्षा की वकालत की| राष्ट्रीय जागरण की लहर चल पड़ी। राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार-

प्रसार के लिए गुरुकुल संस्थाएं डी.ए.वी. कॉलेज,विद्यापीठ निरन्तर प्रयास करने लगे राष्ट्रीय शिक्षा परिषद, रामकृष्ण मिशन, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज जैसी अनेक संस्थाएं भारतीय शिक्षा में राष्ट्रीय प्रयोग करने लगीं।

3.2 गिजुभाई बधेका का शैक्षिक दर्शन

गिजूभाई का जीवन एक प्रकार से शिक्षामय जीवन था| वे पूरे दिल से बच्चों के व्यक्तिव का सम्मान करते थे तथा बाल जीवन की समस्याओं को अत्यन्त गहराई से देखते, समझते और उनका समाधान करते थे| बच्चों की सामर्थ्य, क्षमता एवं प्रयोगशीलता में दृढ़ विश्वास के कारण वह कहते थे- “बालकों ने मुझे प्रेम देकर नया किया, नई जिन्दगी दी| उन्हें सिखाने में सच पूछो तो मैंने ही सीखा| उनका अवलोकन करते- करते मुझे ही आत्मावलोकन का अवसर मिला| उन्हें नीचे से ऊपर ले जाते हुए साथ-साथ मैं भी ऊपर चढ़ता गया| उनका गुरु होने के बावजूद मैंने उनका गुरुत्व देख लिया|”

गिजूभाई का जीवन दर्शन निम्नलिखित प्रमुख बिन्दुओं के आधार पर परिलक्षित होता है- वैवाहिक जीवन की सार्थकता, बाल महिमा, बालकों के प्रति माता-पिता का कर्तव्य, बाल दर्शन, बच्चों की चीजें, धनवानों के बच्चे, बन्धुत्व का विकास, ईश्वर मानव, धार्मिकता एवं सत्य|

3.2.1 वैवाहिक जीवन की सार्थकता

जिस तरह से बीज के भीतर ही वृक्ष है, उनके फूल हैं, फल हैं ठीक उसी तरह से बच्चे के भीतर एक सम्पूर्ण मानव छुपा रहता है| हम युवावस्था को बचपन के विकास की अवस्था कह सकते हैं| इस तरह से अगर बाल्यावस्था प्रात:काल है तो युवावस्था मध्याह्न कही जा सकती है| कालभेद की दृष्टि से देखें तो मनुष्य जीवन की सभी अवस्थाएं बचपन के विकास की ही भिन्न-भिन्न अवस्थाएं हैं|

बच्चा या शिशु मानव जाति का मूल है| यही मूल आगे की सारी प्रगति का स्रोत बनता है| जीवन के सभी लक्ष्य इसी मूल के स्रोत से निकलने वाली धारा से ही पूरे होते हैं| इसके बावजूद बच्चा और उसका बचपन उपेक्षा ही सहते रहते हैं| वे दुत्कारे जाते हैं, अपमानित होते हैं और दर-दर की ठोकरें खाते हैं| हम आज के युग को देखें तो वह क्या हैं? वह असंतुष्ट हैं, जीवन में कोई व्यवस्था नहीं केवल भटकाव है लेकिन उसमें बीज तो उसी बच्चे के हैं ना जो कल तक दुत्कारा जाता तथा किसी तरह ठोक-पीटकर बड़ा कर दिया गया था| कल

का वही बच्चा आज पूरे विकास के बाद युवक के रूप में हमारे सामने है| गिजूभाई कहते थे कि इसके लिए आज का युवा कहां दोषी है, दोषी तो वे हैं जो कल तक बच्चे को सता रहे थे| उन्होंने बच्चों के सहज विकास, उसकी शक्ति के विस्फोट की राह में रोड़े अटकाए थे, उसकी कल्पना शक्ति को अवरुद्ध किया था तथा उसके कर्म और शक्ति को बाधा पहुँचाई थी|

गिजूभाई कहते थे, "वे ही तो दोषी हैं जिन्होंने अपने तुच्छ और क्षुद्र स्वार्थों के चलते बच्चे की जरूरत की तरफ देखा तक नहीं| वे खुद अपने मायाजाल में उलझते रहे और इस पर कोई ध्यान नहीं दिया कि बच्चा किस डगर चला जा रहा है तो वे ही लोग आज के इस असहाय, सत्यविहीन और निस्तेज युवक के निर्माता हैं| इसी कारण आज के बच्चे उनके प्रति विद्रोह की भावना पाले हुए हैं|"

बाल-विवाह के सम्बन्ध में गिजूभाई का विचार था कि बाल-विवाह कितनी भयंकर और दोषपूर्ण प्रथा है| छोटी उम्र में विवाह होने तक ना तो युवक अपने पैरों पर खड़ा हो पाता है और ना ही उसकी पढ़ाई पूरी हो पाती है| आर्थिक तंगी का दवाव उसे लगातार दुर्बल बनाता जाता है| हमें इससे यही शिक्षा मिलती है कि वह शिक्षा कितनी बेकार है जो आदमी को अपने पैरों पर खड़े होने योग्य न बनाये| यह उन नौजवान लड़के-लड़कियों के लिए बहुत बड़ा सबक है जो विवाह करके दांपत्य जीवन का सुख उठाने की लालसा रखते हैं|"

3.2.2 बाल-महिमा

बालक मनुष्य जाति का मूल है| जिस प्रकार एक वेद के अन्तर्गत वृक्ष, उसके फूल और फल समाहित होते हैं, उसी प्रकार एक बालक में सम्पूर्ण मनुष्य है| युवावस्था, बाल्यावस्था का विकास मात्र है| बालक अवस्था का मध्याह्न युवावस्था है और काल वेद से मनुष्य की सब अवस्थाये बालक की ही भिन्न-भिन्न अवस्थाये हैं|

- गिजुभाई के अनुसार बच्चा ईश्वर का अनमोल उपहार है|
- बालक प्रकृति के सुन्दर से सुन्दर कृति, मानव कुल का विश्राम, प्रेम का पैगम्बर तथा समष्टि की प्रगति का एक अगला कदम है|
- यदि परमात्मा ने कोई निर्दोष वस्तु उत्पन्न की है तो वह बालक ही है जिसके साथ हम निर्दोषता का अनुभव करते हैं|

गिजूभाई बालक से अत्यधिक लगाव पर विशेष जोर देते हैं| गिजूभाई के विचार में इसकी स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है| वे कहते थे-

नाग पूजा का युग बीत चुका है,
प्रेत पूजा का युग बीत चुका है,
पत्थर पूजा का युग बीत चुका है,
मनुष्य पूजा का युग बीत चुका है,
अब तो
बच्चे की पूजा का युग आया है,
बच्चे की सेवा ही बच्चे की पूजा है,
इस नए युग का निर्माण कौन करेगा?
जीवन के इस प्रवाह को सतत कौन बनाए रखेगा?
आने वाले युग का स्वामी कौन होगा?

बालक के प्रफुल्लित मुख में प्रेम सतत समाया रहता है| बालक की हंसी वाली मधुर नींद में शान्ति और गम्भीरता छिटकी रहती है| बालक की तोतली बोली में कविता बहती है तथा बालक के साथ-साथ बड़े भी व्याकरण विहीन भाषा बोल कर आनन्दित होते हैं|

गिजूभाई कहते थे- "जो व्यक्ति बच्चों के साथ बच्चा बनकर खेल नहीं सकता, वह सहृदय कैसे हो सकता है| प्रेम के मामले में आप कहीं और दम्भी हो सकते हैं, बच्चों के सामने नहीं| बच्चा प्रेम का सच्चा दर्पण होता है|"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बालक ही नये युग के निर्माता, भूतकाल की समृद्धि और वर्तमान की विभूति को भविष्य की गोद में रखने वाले हैं|

3.2.3 बालकों के प्रति माता-पिता का कर्त्तव्य

गिजूभाई बच्चों के सही और आनन्दमय विकास में माता-पिता की भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते थे| वह कहते थे कि बालक का शरीर छोटा है लेकिन उसकी आत्मा महान है| बालक की शक्तियां विकासशील है लेकिन उसकी आत्मा तो सम्पूर्ण है| इसलिए माता-पिता को उसका सम्मान करना चाहिए| छोटी-छोटी बातों पर बालकों को अनावश्यक रूप से टोका या रोका नहीं जाना चाहिए| वे बालक के दृष्टिकोण में शिक्षा का एक मनोरम शस्त्र देखते थे| वह कहते थे- "बहनों, हमारे घरों में बच्चे भगवान का रूप लेकर पधारे हैं| सारे बच्चे ही हमारे लिए छोटे-छोटे देव हैं| इसलिए हम इन वाल देवों से प्यार से पेश आएं| उन्हें यथोचित सम्मान दें| सच्चा प्रेम इस बात में नहीं है कि अपने बच्चे को कितने गहने पहनाएँ, या क्या-क्या पकवान खिलाएं, या कितने कीमती कपड़े पहनाए है| सच्चा प्रेम तो इस बात में है कि हम उन्हें उसकी पसन्द के काम करने दें, और वे अपनी पसन्द का काम कर सकें, इसके लिए उन्हें अनुकूल परिवेश भी दें| वे जो कुछ भी करना चाहे, करें| हम बीच में बाधा खड़ी ना करें|"

बालक माता-पिता के हृदय में पवित्र और निर्मल प्रतिबिम्ब है| वे उनके जीवन सुख की एक प्रफुल्ल और प्रसन्न खिलती हुई कली के समान हैं किन्तु जहाँ तहाँ से बटोरे हुए झूठे सच्चे आदर्शों की खिचड़ी पका कर खाने वाले माता-पिता अपने ही हृदयों को स्वयं नहीं पहचान पाते| वे अपने ही जीवन को सम्भाल लेने में लापरवाही करते हैं| वे खुद ही अपने बालकों की निन्द करते हैं, उनको डाटते-फटकारते हैं, उनसे झगड़ते हैं और कभी-कभी यह भी कह बैठते हैं कि हाय राम अब इस नासपीटे से कैसे छुटकारा पाया जाए? वे अपने बालकों को दादा-दादी, काका-काकी, माता-पिता या नौकर के हवाले करके सैर सपाटे के लिए, घूमने-खेलने और मौज-मस्ती के लिए घर से बाहर निकलना चाहते हैं लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि बालक की परमात्मा की वह अद्वितीय उत्पत्ति है जो उनको बांझपन के कलंक से बचाते हैं, घर को किल कारियों से भर देते हैं, मां को ग्रहणी बनाते हैं तथा जीवन के संग्राम में पिता को जंग बहादुर बनाते हैं|

बालक अपनी तोतली बोली के साथ वे जीवन शास्त्र, शिक्षाशास्त्र और प्रेम में जीवन का साक्षी बन कर आये हैं| अत: प्रत्येक माता-पिता को जीवन के सारे अरमान अपने बालक के समक्ष रखना चाहिए| बालक के

साथ जुड़ा हुआ प्रेम, जीवन का धन स्वरूप है, शुद्ध और सात्विक है क्योंकि उसमें त्याग का सुख समाया हुआ है| बालक न तो मिट्टी का पिण्ड है और न मोम की तरह है कि हम जैसी भी शक्ल दे उसकी तरह बन जाये| बालक का अपना एक चेतन युक्त व्यक्तित्व होता है| वह स्वयं ही अपने को गढ भी सकता है| अतः माता-पिता को चाहिए कि बालक की सारी गतिविधियों में बाधा बनकर उनका सूक्ष्म अवलोकन करें तथा जहाँ भी जरूरत हो उसकी मदद के लिए उसके आसपास ही बनी रहे| उस पर लदें नहीं |

गिजूभाई के अनुसार बालकों के प्रति माता-पिता के कर्तव्य इतने व्यापक और गम्भीर हैं कि उस पर ग्रन्थ भी लिखी जाये तो वह छोटी ही लगेगी| वह माता-पिता से कहते हैं कि-

1 बालक एक सम्पूर्ण मनुष्य है| बालक में बुद्धि है, भावना है, मन है, समाझ है| बालक में भाव और अभाव है रुचि और रुचि है| बालक नन्हा और निर्दोष है अतः माता-पिता बालक की इच्छाओं को समझें तथा अपने अहंकार के लिए बालक का तिरस्कार न करें|

2 गिजूभाई कहते हैं कि बच्चों को मारना पीटना नहीं चाहिए, उन्हें कोई सजा नहीं देनी चाहिए| इससे बालक सुधरते नहीं है बल्कि सजा के कारण उनके मन में जो डर पैदा होता है वह भयंकर प्राणघातक होता है| इस डर के कारण बालक डरपोक, झूठ बोलने बाला तथा नामर्द बन जाता है| आगे चलकर डर के कारण ही बच्चे दुराचारी और भ्रष्ट बन जाते हैं| इसी कारण लालच देकर बालक से कोई काम करवाया जाता है तो वह लालची बन जाता है और स्वाभाविक गति से उसका जो विकास होना चाहिए था, वह नहीं हो पाता है|

3 बच्चों में स्पर्धा का विष नहीं घोलना चाहिए| जैसे अक्सर माता पिता कहते हैं कि आओ देखें पहले कौन दौड़ता है, कौन पहले पानी लाता है इससे उनका काम तो आसानी से हो जाता है, लेकिन बालक की आदत बिगड़ जाती है| जब-जब उसको होड़ में उतरने का मौका नहीं मिलता, तब तक वह दूसरों को हराकर, मारकर, दूसरों की अवहेलना करते हुए खुद जीत का सुख लूटने की कोशिश करता है| स्पर्धा या होड़ एक तरह का नशा है जिस तरह एक नशेबाज आदमी नशे की हालत में अपना जोर दिखाता है उसी तरह जब तक आदमी पर स्पर्धा का नशा सवार होता है तभी तक वह काम करता है| इतना ही नहीं स्पर्धा में एक व्यक्ति आगे निकल जाता है और दूसरा पीछे| जो पीछे रह जाता है वह निराश और निरुत्साही बनता है और जो जीत जाता है वह दम्भी और घमंडी बन जाता है|अत: स्पर्धा सच्ची प्राणशक्ति को दूर भगा देती है|

4 जब बालक हमारा चाहा या कहा हुआ काम नहीं करता तो हम उसको ऊधमी या तूफानी कहते हैं तथा जब बालक घर के सामान का तोड़-फोड़ करता है या कहीं भटकने के लिए चला जाता है तो हम उसको उपद्रवी कहने लगते हैं, इसी प्रकार जब बालक अपना मनचाहा काम करता है और मन में आई बात को नहीं छोड़ता तो हम उसको हठीला कहते हैं लेकिन गिजुभाई कहते हैं कि बालक तो ऊधमी या हटीला होता ही नहीं है| जब बालक तोड़फोड़ करता है उस समय वह कोई उधम नहीं करता बल्कि अपनी क्रिया प्रधान वृद्धि को सन्तुष्ट कर अपनी उम्र के अनुसार अपना विकास करता है।

जब बालक इधर-उधर भटकता है तब या तो वह हमारे घर को पसन्द नहीं करता या शारीरिक जरूरतों को पूरा करने के लिए इधर-उधर दौड़ता हुआ कसरत करता है| अतः बालक यदि बिना किसी को नुकसान पहुँचाए अपने आप को किसी असाधारण संकट में डाले बिना अपने पसन्द का काम करता है तो माता-पिता को उसके काम में बाधक नहीं बनना चाहिए।

5 शुरू में मां-बाप बच्चों को उनके हाथों काम करने नहीं देते, इसलिए उनको बच्चों के काम करने पड़ते हैं| जब बच्चा बड़ा हो जाता है और वह काम करना नहीं जानता तो मां-बाप को उसकी शिकायत बनी रहती है| हम सोचते हैं कि बच्चा इतना बड़ा हो गया, फिर भी वह अपना काम क्यों नहीं कर पाता? लेकिन बच्चा चाहे बड़ा हो जाए पर काम किए बिना वह काम करना कैसे जानेगा? बचपन में यह मानकर कि बालक खुद कोई काम नहीं कर सकता, इसलिए हम उनको काम नहीं करने देते| जब बच्चा बड़ा हो जाता है और उसको काम करना नहीं आता है तो हम उस पर गुस्सा होने लगते हैं| सच तो यह है कि हम बचपन से ही बालक को काम करने की मौके दें| सच है कि बचपन में बालक हमारी तरह सब प्रकार के काम भली-भाँति कर नहीं सकता| लेकिन हम बड़ी उम्र के लोग जो काम आज फुर्ती के साथ अच्छी तरह कर लेते हैं, उनको हम अपने बचपन से ही तो नहीं करने लगे थे? धीरे-धीरे काम करते-करते ही हम अच्छा काम करने लगते हैं।

6 बालक को धार्मिक व नीति की शिक्षा देने से वह संस्कारवान और धार्मिक नहीं बन सकता क्योंकि धर्म किसी पुस्तक में नहीं है, किसी उपदेश में नहीं है और न कर्मकाण्ड की जड़ता में ही है| धर्म तो मनुष्य के जीवन में है| यह माता-पिता अपने जीवन को धार्मिक बनाए रखेंगे तो बच्चों में स्वयं धार्मिक प्रवृत्ति हो जाएगी| इसी

प्रकार जब माता-पिता अच्छे संस्कारवान, आदर्श विचारधारा वाले होंगे तो बच्चों में नैतिकता के गुणों का विकास कराने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी| बालक स्वता ही नैतिक गुणों वाला बन जाएगा।

3.2.4 बाल दर्शन

गिजूभाई का बाल दर्शन उस प्रकार का बाल-दर्शन नहीं था जो किसी जटिल विचार की स्थापना करता हो| गिजूभाई बाल-दर्शन का कोई सिद्धान्त भी प्रतिपादित नहीं करते वे तो बच्चों में इस प्रकार प्रवेश करते हैं जैसे कोई किसी मन्दिर में प्रेम और श्रद्धा पूर्वक प्रवेश करता हो| बेचारे बाल छवि देखकर मुग्ध होते हैं आँखों में झांककर उसके सपनों को पढ़ाते हैं उसकी वाणी को सुनकर कोमलता का मधुर संगीत सुनते हैं और उसे खेलते हुए, काम करते हुए उछलते कूदते या गाते हुए देखकर उसके साथ एकाकार हो जाते हैं| वे बच्चों का तन पढ़ते हैं बच्चों का मन पढ़ते हैं और उसका जीवन पढ़ते हैं।

गिजूभाई का बाल-दर्शन और शिक्षा शुरू से प्रारम्भ होता है जो स्कूल में आने के पूर्व घर में पलता है और जिस पर मां-बाप जान तो छिड़कते हैं लेकिन तरह-तरह के डरों के कारण उसे स्वतंत्र नहीं होने देते| परिवार में पाए जाने वाले इन अवरोधों के कारण बच्चों का विकास सही ढंग से नहीं हो पाता और 'कुछ न करने' या 'करने से इनकार' कर देने वाला मनोविज्ञान उनमें बचपन से घर कर लेता है ऐसे बच्चे कभी-कभी उदण्ड बन जाते हैं या आगे चलकर उनमें निर्णय लेने की क्षमता का विकास नहीं होता आत्मनिर्भरता की जगह पर निर्भरता बढ़ती है| वह सतत संदेहों और डरों में जीते हैं इस प्रकार उनके मानसिक एवं शारीरिक विकास की गति शिथिल हो जाती है| गिजूभाई यह मानते थे कि बच्चे मन के सच्चे होते हैं वे आपसी कटुता की भावना बड़ों से ही ग्रहण करते हैं| इसके लिए उन्होंने दो बच्चों के वार्तालाप को निम्नवत प्रस्तुत किया है।

- भैया कानजी। तुम क्या खा रहे हो?
- मैं मुरमुरे खा रहा हूँ?
- तुम मुझको मेरा हिस्सा नहीं दोगे?
- मेरी मां ने मना किया है।
- किस लिए मना किया है?

- कल तुम्हारी मां ने मेरी मां को जामन नहीं दिया था न? लेकिन मैं तो तुमको तुम्हारा हिस्सा देती हूँ न? मैं कब इनकार करती हूँ?

तो लो, मैं भी इनकार नहीं कर रहा हूँ पर मेरी मां को पता नहीं चलना चाहिए, समझी? मां को पता चल गया, तो वे मुझ पर नाराज होंगी और कहेगीं: मैंने तो मना किया था, फिर भी तुमने क्यों दिया?

इसी प्रकार गिजुभाई कहा करते थे कि बच्चों का मन निर्मल होता है झूठ तो उसके परिवार के सदस्य ही बोलते हैं| इसके लिए उन्होंने एक सजीव दृष्टांत प्रस्तुत किया है- 'कमला काकी क्या चुटकी भर चने का आटा है? मेरी मां को कढी में डालने के लिए चाहिए|' 'बेटे, वेशन तो कल ही चुक गया था| अब तो एक चुटकी भी नहीं बचा है|' लक्ष्मी बोली: मां उस पायली में थोड़ा बेसन रखा तो है|' मां ने तपी हुई आवाज में कहा: 'अभागिन' उतना तो हमको अपने लिए चाहिए न? आज कढ़ी कैसे बनेगी?' लक्ष्मी: लेकिन तुमने यह क्यों कहा कि बेसन नहीं है? उपरोक्त वार्तालाप द्वारा हम देखते हैं कि बच्चे मन के सच्चे होते हैं।

3.2.5 बच्चों की चीजें

गिजूभाई बच्चों पर प्रभुत्व के विरुद्ध थे| बच्चों की स्वतंत्रता के दो तत्व उन्होंने अपनी आदर्श विचारक माण्टेसरी से ग्रहण किए थे उन्हें वे परिवारों में सार्थक होते देखना चाहते थे| इसलिए जब परिवार में यह समाज में देखते तो उन्हें लगता कि परिवार और समाज के लिए तो बच्चे आवश्यक है, लेकिन बच्चों के लिए क्या आवश्यक है और क्या आवश्यक नहीं है, यह कोई नहीं सोचता| बच्चों के संसार में बच्चों के लिए कुछ भी नहीं है| सब कुछ प्रौढों का प्रौढों द्वारा रचा गया और प्रौढ निर्णयों से तय किया गया है| बच्चे प्रौढों के लिए तैयार की गई सुविधाओं से ही अपना काम तो चलाते हैं लेकिन ये बड़ी-बड़ी चीजें बच्चों की उम्र की ओर उनके भावनाओं की मांग पूरी नहीँ करती जिसके कारण वे स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर नहीं बन पाते| बड़ी-बड़ी अलमारियों में बच्चे ना कपड़े रख सकते और न निकाल सकते हैं| ऊँची-ऊँची खूटियों पर बच्चों के हाथ नहीं पहुँच पाते, माता-पिता का बड़ा कमरा उसके लिए डर पैदा करता है| माता-पिता के साथ पलंग पर सोते हुए उन्हें ऐसा नहीं लगता कि वे अपने बिस्तर पर अपने सजाकर सो रहे हैं| इस प्रकार गिजूभाई मानते हैं कि हम प्रौढों ने बच्चों को बचपन में बूढ़ा मान कर वे साधन उनके आस-पास खड़े कर दिए हैं जो उनके लिए

है ही नहीं, न शारीरिक रूप से और न मानसिक रूप से| अत: उनका मानना है कि बच्चों की स्वतंत्रता का मतलब यह है कि बच्चों को भी सब काम घरों में प्रारम्भ से ही करने दें जो माता-पिता उनके सामने करते रहते हैं| यह नकल वृद्धि ही तो आगे चलकर बच्चों में कोई भी काम करने, चीजें खोजने, चीजें ठीक से, रखने सम्भालने और अपना काम स्वयं करने को प्रेरित करती हैं और उनमें आत्मविश्वास एवं निर्णय लेने की क्षमता पैदा करती हैं| घरों में छोटी-छोटी चीजों की उपलब्धता व सुविधा से ही बचपन का आनन्द शुरू होता है| इसलिए गिजुभाई माताओं से विशेष रूप से आग्रह करते हुए कहते हैं कि बालक खुद जिन चीजों का उपयोग आसानी से कर सकें, ऐसे छोटे-छोटे बर्तन, छोटी लाठियां, छोटी कटोरियां, छोटी थालियां, छोटी झाड़ू, छोटे सूप, छोटी बाल्टियां आदि सामान घर में उनके लिए सुलभ कराना चाहिए ताकि वह अपने से बड़ों का नकल करते हुए अपना शारीरिक व मानसिक विकास कर सकें।

3.2.6 धनवानों के बच्चे

गिजूभाई का बाल-दर्शन केवल बच्चों, माता-पिताओं, शिक्षकों और शालाओं तक ही सीमित नहीं था बल्कि उन धनवानों में भी बच्चों का वह दर्शन देखते थे जो धनवान बच्चों व गरीब बच्चों के बीच अर्थ का अन्तर समाप्त कर मनुष्य की समानता रच सके| धनवानों के घरों में माता-पिता और नौकर-चाकर बच्चों की जिंदा रहने की जितनी चिन्ता पालते हैं उतनी उनके आनन्द, रुचि, खुशी व खेल की नहीं| उनकी सारी सावधानियां बच्चों को जीवित रखने से जुड़ी हैं, उसे स्वस्थ रखने पर भी वे अनावश्यक खर्च करते हैं और मामूली बीमारी पर डॉक्टरों व दवाइयों की भीड़ खड़ी कर देते हैं| गिजूभाई का मानना था कि जिस प्रकार एक घोड़े की देखभाल की जाती है वैसे ही धनवानों के घरों में बच्चों की देखभाल की जाती है| बच्चों के संवेग, प्रवृत्ति, रुचि आदि बातों पर ध्यान ही कौन देता है? ये चीजें तो पैसों से पैदा नहीं हो सकती हैं| गिजूभाई चाहते थे कि बच्चों पर मां-बाप या धनवान लोग जो नौकरों चाकरों का नियंत्रण लाध देते हैं उससे बच्चे मुक्त हों वे कहते थे कि नौकर बच्चों को डराते और धमकाते भी हैं| बच्चों को नौकरों की गुलामी से दूर रखने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि बच्चों के लिए नौकर रखे ही न जाएं| गिजूभाई बालक को धनवानों का धन बनाने की वजह धनवानों का मन बनाना चाहते थे| वे चाहते थे कि धनवानों के बच्चे-

- नौकरों के नियंत्रण से मुक्त हो|
- अप्रिय एवं डराकर पढ़ाने-सिखाने वाले शिक्षकों से मुक्त हो|
- मां-बाप के नकारात्मक तरीकों से मुक्त हो|
- ऐसी पाठशाला से मुक्त हो, जो स्वागत ना करें, खुशी पैदा ना करें तथा खेलने पर पाबंदी लगाए| पाबन्धियों की पाठशाला बच्चों की शिक्षा के लिए नहीं बल्कि गुलामी के लिए है और ऐसी पाठशाला इवान इलिच की तरह गिजुभाई के बाल-दर्शन में निरर्थक थी| गिजूभाई का यह बाल-दर्शन कितना प्रभावी, उदार और विराट था कि स्वयं गाँधीजी ने उसे अपनाया था और यंग इंडिया 19-11-1931 के अंक में सारी दुनिया को गिजुभाई के बाल-दर्शन का यह संदेश दिया था- "अगर हमें दुनिया में सच्ची शान्ति प्राप्त करनी है और अगर हमें युद्ध के विरुद्ध सच्ची लड़ाई लड़नी है तो हमें बालक-बालिकाओं से इसका आरम्भ करना होगा और अगर बालक बालिका अपनी स्वाभाविक निरीक्षण से बड़े होंगे तो हमें संघर्ष नहीं करना पड़ेगा, हमें निष्फल और निरर्थक प्रस्ताव पास नहीं करने पड़ेंगे| हम प्रेम से अधिक प्रेम की ओर एवं शान्ति से अधिक शान्ति की ओर बढ़ेंगे|"

3.2.7 बन्धुत्व की भावना का विकास

गिजुभाई बन्धुत्व की भावना के विकास पर विशेष ज़ोर देते थे| उनके अनुसार बालकों में बन्धुत्व की भावना पायी जाती है किन्तु बड़े बुज़ुर्ग उनके इस प्रवृत्ति का दमन कर देते हैं| परिणाम स्वरूप बालक अपने को समाज से अलग समझने लगता है तथा स्वार्थी प्रवृत्ति का बन जाता है| इसके लिए गिजुभाई ने निम्नलिखित दृष्टान्त प्रस्तुत किया है- विद्यालय में अध्यापक दो मित्रों की बाते करते देखकर चलो, काम में लगो, कहाँ भटक रहे हो? कहते हुए मित्रता के भाव को बढ़ाने बाली क्रिया में पत्थर फेकता है; एक बालक को जब कोई पाठ समझ में नहीं आया और उसका मित्र उसे कुछ बता देता है तो उसे 'नकल' कहते हुए अध्यापक उन बौद्धिक कार्य में परस्पर सहयोगी बनने की प्रवृत्ति को अपराध सिद्ध करता है| इसी प्रकार एक माँ जब अपने बड़ी लड़की को गोद में लिए छोटे भाई पर प्यार व्यक्त करते देखती है तो उस पर क्रोधित होकर चीख उठती है और चिल्लाते हुए कहती है – "नीचे बैठा दे, पटक देगी इसे कहीं|" तो ऐसी माँ अपने पुत्र की उस बड़ी बहन के

दिल में उमड़ते प्रेम-प्रवाह को सुखा डालती है| इस तरह हम भी दया, प्रेम, सहानुभूति और सहयोग आदि उच्च मानवीय वृत्तियों के विकास को अवरुद्ध कर डालते हैं और फिर व्यवस्था के लिए पुलिस, जेल खाने, फौज की भर्ती आदि करने लग जाते हैं|"

3.2.8 ईश्वर

गिजुभाई ईश्वर में अत्यधिक आस्था रखते थे| उनके अनुसार सभी समस्याओं का समाधान ईश्वर के शरण में जाने से ही सम्भव है| गिजूभाई कहते थे- "समस्याओं के समाधान का एक आखरी आधार है- ईश्वर की शरण में जाने का| सभी समस्याएँ हमें स्वत: अपनी गलतियों से प्राप्त हुई हैं| ये स्त्री-पुरुष, यह समाज, यह शिक्षा व्यवस्था, ये हमारी पाठ्यशालाएँ और इन सभी के बीच स्वय हम| यह एक परेशानी की बात है जो बिना कोशिश करने पर रहेगी और हमारे कोशिश करने के बावजूद भी रहेगी| अगर हम ईश्वर में या ऐसी ही किसी शक्ति में आस्था रखते हैं तो उनकी शरण में जाकर कहना चाहिए की जो कुछ उसकी मर्जी है व्ही होगा, अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुरूप मैं तो कर्मशील ही हूँ और आगे भी कर्मनिष्ट रहूँगा| ऐसा चिंतन करने से प्रयत्नशील व प्राणवान व्यक्ति को शक्ति मिलेगी|"

3.2.9 मानव

गिजुभाई की दृष्टि में मानव, समाज का ही एक अंग है| उन्होंने मानवीय गुणों से युक्त मानव को ही सच्चा मानव कहते हैं| गिजूभाई के अनुसार "अभी तक मानव अपनी कीमत बाहरी स्तुति- निन्दा के स्तर पर आकता रहा है| समाज ने भी उसी को धर्मि कहा है जो धर्म का कवच मजबूती से पकड़े रखता हो, उसी को नैतिक कहा है जो नीति के बाहरी बन्धनों को प्रत्यक्षतया आत्मक तोड़ता न हो; उसी को अहिंसक कहा है जो चींटी-मच्छर या इंसान को सामने न मारता हो, उसी को व्यवस्थित, संयमी व संतुलित कहा है जो किसी प्रसंग को सम्भाल लेता हो- व्यवहार को निभा लेता हो| वह सभी सही मानव की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में करते हैं "पर सही मानव कोई अन्य हो सकता है| चाहे समाज, धर्म या ईश्वर न हो, वह सिर्फ अपने मंत्रियों से ही प्रतिबद्ध रहता है, उन्हीं के लिए अपने जीवन मरण का बलिदान देता है, उनके परिपालन में ही अपनी सफलता अनुभव करता है| ऐसा मानव ही सच्चा मानव है|"

3.2.10 धार्मिकता

गिजूभाई ने धार्मिकता पर अपना व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है| उनके अनुसार धर्म का तत्व अन्तरात्मा में रहता है| इसके लिए आत्मा का द्वार खोलकर झांकना पड़ता है| कर्मकाण्ड, पाण्डित्य, हठ युक्त जप-तप आदि धर्म नहीं है, धर्म सुन्दर कवच मात्र है| धार्मिकता का मूल्य इसी भावना की जागृत होने में है, अन्यथा वह दमपोषी सिद्धान्त बन जाती है| धार्मिकता का अर्थ कीर्तिदान नहीं, स्वार्थ पूर्ण दर्पण या प्रतिफल की उम्मीद में की गई भक्ति नहीं, धार्मिकता एक वृत्ती है| सद-असद, विवेक-बुद्धि धर्ममार्ग का आकाशदीप है| संयमित क्रिया शक्ति में इसकी प्राण-शक्ति विद्यमान रहती है| सद-असद, विवेक-बुद्धि अर्थात इन्द्रियों की शुद्धि व संस्कारिता तथा मन की निर्मल ग्रहण-शक्ति, मापन शक्ति व निर्णय-शक्ति और क्रिया शक्ति का संयमन अर्थात निर्णय-प्रेरित क्रिया के प्रत्यक्ष पुनरावर्तन से उत्पन्न होने वाली क्रिया को करने या न करने का बल निर्णय-शक्ति एवं बलपूर्वक उपदेश से उदभूत नहीं होते, न तर्क-विषयक पुस्तकें पढ़ने से हाथ लगते हैं अपितु ये तो इन्हें करने की क्रिया से ही उदभूत होते हैं|

धार्मिकता एक और तत्व की अपेक्षा रखती है और वह है प्रेम| जीवन की उत्कृष्टता व परम सफलता में प्रेम निहित है| प्रेम ने समस्त सचराचर जगत को एक सूत्र में बांध रखा है| यह तत्व जन्तुओं आदि से लेकर देवताओं तक की दुनिया में स्वयं विद्वान है| यह तत्व बालक को मां के दूध के साथ उपलब्ध होता है और वहां से वह आगे विकसित होता है| यह तत्व मनुष्य के लिए संजीवनी है| इसके विकास में मनुष्य जीवन का उद्धार है| बुद्ध, मोहम्मद, क्राइस्ट और गाँधीजी इसी एक तत्व के कारण पैगम्बरों की तरह विख्यात हैं|”

3.2.11 सत्य

गिजूभाई ने सभ्य समाज की स्थापना के लिए तथा शान्तिपूर्ण जीवन यापन के लिए सत्य को आवश्यक बताया है| बालक अपने बड़े-बुजुर्गों की सख्ती और दहशत के मारे झूठ बोलने लगता है क्योंकि वह उनके सामने सत्य बोलने में डरता है| गिजूभाई इस बारे में अपना विचार निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त करते हैं- “झूठ का मूल है भय| सबसे पहला काम है बालक को इस भय से मुक्त करना| बुजुर्गों वाली धारणा असत्य है| और शक्ति से बालक वश में आता प्रतीत होता हो- मात्र ऊमरी दृष्टि से, भीतर तो वह बड़ों को समाप्त करने की

बात सोच रहा होगा| ऐसे में बड़ों को दिनों-दिन सख्ती बढ़ानी पड़ेगी| गिजूभाई कहते हैं यह तो नशे बाजो का बाला तरीका हुआ| क्षण भर तो सतही लाभ प्रतीत होता है किंतु बाद में फिर से उसका प्रभाव ठंडा पड़ने लगता है| परिणामत: भय और सख्ती की मात्रा बढ़ानी पड़ती है| ऐसे में बालक चिड़चिड़ा बन जाता है और परेशान करने लगता है| इसका उपाय यही है कि बालक को बड़े- बुजुर्गों से दूर हटा दें या फिर बड़े- बुजुर्गों से उनके बुजुर्गपन का अधिकार छीन लें| बालक के दिल में, लगता है बुजुर्गों का डर गहरा बैठ गया है इसीलिए बालक को दूसरों के हाथों सौंप दिया जाए ताकि उसे निर्भय वातावरण मिले| निर्भय बालक ही सत्य बोलता है|"

3.3 गिजूभाई बधेका के शैक्षिक विचार

गिजुभाई ने शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये| लिए इन प्रयोगों का उद्देश्य एक ऐसे बालक का निर्माण था जो बच्चों के सम्यक इन्द्रिय विकास, शांति, क्रीडा, शैक्षिक भ्रमण, शारीरिक विकास तथा कहानी श्रवण जैसी प्रवृत्तियों का केंद्र हो, जहां बच्चे हंसते-खेलते मन वांछित गतिविधियों में भाग लेते हुए शिक्षा प्राप्त करें| उनके शैक्षिक प्रयोगों में बालकों के मानसिक विकास के साथ-साथ अन्य मानवीय गुणों जैसे- सत्य,अहिंसा, करुणा, स्नेह, दया, परोपकार, ईमानदारी, भाईचारा, परिश्रम आदि के विकास पर भी ध्यान दिया जाता था| उन्होंने माण्टेसरी शिक्षा पद्धति का गहन अध्ययन किया तथा उनके सिद्धांतों को भारतीय परिवेश तथा आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला| उन्होंने नये-नये शैक्षिक प्रयोग किए| आज अध्यापकों की दिशाहीनता के कारण शिक्षा मुख्यधारा से हटती जा रही है एवं शिक्षक समुदाय अपने कर्तव्य से विचलित हो गया है इसलिए अब नए शैक्षिक प्रयत्नों को हमें अत्यंत आवश्यकता है| वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में गिजुभाई के शैक्षिक विचारों से हमें नयी दिशा प्राप्त हो सकती है| उन्होंने अत्यंत कठिन परिस्थितियों में अकेले ही प्रचलित शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करने का प्रयास किया और उसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई|

3.3.1 गिजूभाई के अनुसार शिक्षा की अवधारणा

गिजूभाई 'बालकेन्द्रित' शिक्षा के पक्षधर हैं| उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों के नैसर्गिक मानसिक क्षमताओं के विकास में योगदान करे और उसे समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी एवं सबल नागरिक के रूप में तैयार कर सके|

गिजूभाई शिक्षा के माध्यम से बालक की बौद्धिक एवं मानसिक विकास पर अधिक बल देते हैं| इसके साथ ही मानवीय गुणों जैसे- सत्य, अहिंसा, करुणा, स्नेह, दया, त्याग, परोपकार, ईमानदारी, सद्भाव, मैत्री, भाईचारा, परिश्रम, सहयोग आदि के विकास को भी आवश्यक मानते हैं| गिजूभाई ने शिक्षा की परिभाषा को निम्नलिखित रूप से व्यक्त किया है-

शिक्षा एक जीवन-व्यापी प्रक्रिया है| इस प्रक्रिया का उदगम हमारे भीतर से है| इस प्रक्रिया के उदगम का मूल है- अन्तरात्मा की भूख| हम किसी को तब तक नहीं सिखा सकते जब तक कि वह स्वयं सीखने के लिए अभिप्रेरित ना हो| विकास को आधारशिला अनुभव है और अनुभव स्वतंत्र क्रिया में निहित है|

3.3.2 गिजूभाई के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

गिजुभाई ने बालक के तन-मन का दर्शन रचा था| एक ऐसी अभूति की प्रेरणा से-जो थी तो एक डॉक्टर एवं मनोविश्लेषक, किन्तु जिस ने ना केवल इटली बल्कि सारे संसार के बच्चों के चेहरे पर आनन्द की वर्णमाला लिख दी| गिजुभाई ने माण्टेसरी पद्धति को अपनाकर बालकेन्द्रित शिक्षा का जो मॉडल रचा और उसे प्राथमिकशाला में आजमाकर यह साबित कर दिया कि लक्ष्मी शंकर के समान एक कल्पनाशील शिक्षक किस प्रकार शिक्षा की समूची अवधारणा ही बदल सकता है| जो मुख्य तत्व गिजूभाई के बाल दर्शन उभरकर आते हैं, वे निम्नलिखित हैं-

- बच्ची-बच्चे घर के अनुभवों की दुनिया लेकर शाला में आयें तथा शाला के आनन्द और आजादी की दुनिया लेकर घर जायें|
- बच्ची-बच्चे परिवेश, पड़ोस या वातावरण से सीखते हुए आए और शाला में अपने ज्ञान को आजमाएँ और नया ज्ञान साथ ले जायें|

- बच्चों का निर्णय ही सीखने और सिखाने का निर्णय हो| ऐसे अवसर पैदा करें कि बच्चे सीखने की आजादी महसूस करें तथा स्कूल उनके लिए घर के सामान लगे और शिक्षक उनके माता-पिता तथा दोस्त की तरह प्रेम करें|

3.3.3 शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न बिन्दुओं पर गिजुभाई के विचार

गिजूभाई ने शिक्षा सम्बन्धी अनेक बिन्दुओं पर अपना विचार प्रस्तुत किया जिनमें से महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नलिखित हैं-

1.विद्यालय 2. शिक्षक 3. विद्यार्थी 4. पाठ्यक्रम 5. शिक्षण विधि 5. अनुशासन

1.विद्यालय

गिजूभाई के अनुसार विद्यालय एक ऐसा विनय मन्दिर है जो पूर्ण रूप से बच्चों को समर्पित है| शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण करने के बाद अपने दिवा स्वप्न के अनुसार उन्होंने एक प्राथमिक बाल मन्दिर शिक्षण कार्य प्रारम्भ किया जिसके माध्यम से वे बालकेन्द्रित शिक्षा का प्रयोग सफल बना सके। गिजूभाई का विचार था कि विद्यालय एक ऐसा मन्दिर है जिसके देवता बच्चे हैं और शिक्षक उसके पुजारी हैं| उन्होंने बालकों में ही अपने इष्टदेव का दर्शन किया। गिजूभाई के अनुसार विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहां बच्चों का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है गिजूभाई द्वारा स्थापित विद्यालय आदर्श प्राथमिक पाठशाला थी जहाँ पर माण्टेसरी पद्धति से शिक्षा दी जाती थी।

माण्टेसरी शाला का उद्देश्य पढ़ाना, लिखाना या सिखाना ना होकर मनुष्य और मनुष्य के मन का अध्ययन है| डॉ माण्टेसरी बालकेन्द्रित शिक्षा को आदर्श रूप प्रदान करने हेतु विद्यालय को घर के समान मानती है, जहाँ स्वतंत्रतापूर्वक बालक को अपना स्वाभाविक विकास करने का अवसर प्राप्त होता है| माण्टेसरी का कहना है कि व्यक्ति के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रत्येक घर में उत्पन्न नहीं किया जा सकता तथा शालाओं में बच्चे एक बड़ी तादात में पढ़ाई कर पढ़ाई लिए काफी समय तक यहाँ रहते हैं| अतः बालमन के अनुरूप शालाएँ अगर वातावरण निर्मित करें तो बालक का सर्वांगीण विकास हो सकता है|

विद्यालय वातावरण की रचना कैसे की जाय? इसके भी तत्व गिजूभाई ने माण्टेसरी पद्धति से लिया है| गिजूभाई के अनुसार विद्यालय की रचना निम्नलिखित प्रकार से होनी चाहिए-

- बालकों के विकास के लिए जिन- जिन चीजों की जरूरत है उसे पहचान कर विद्यालय में उपस्थित किया जाय।
- विद्यालय का वातावरण बालक की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास के अनुरूप हो।
- बालक के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए विद्यालय में खुली हवा, स्वच्छ शौचालय, मूत्रालय, स्नानगार, धोने लायक विद्यालय का फर्ज, चौड़ी खिड़कियाँ, पौष्टिक भोजन, बगीचा, ऊँची छतें, लम्बे-चौड़े हॉल तथा उससे सम्बवृद्ध छोटे-छोटे कमरे आदि आवश्यक हैं।
- फर्नीचर, श्यामपट, दरियां, पानी के बर्तन आदि के बजन सब बच्चों के कद और उम्र के मुताबिक हो ताकि उसे उपयोग में लाया जा सके| साधन नाजुक और सख्त दोनों प्रकार के हों जिससे बालक धीरज और सख्ती सीख ग्रहण कर सके।
- स्वयं काम करने के साधन, संगीत के साधन, खेलने-कूदने के साधन, सौंदर्य और साज-सज्जा के साधन, सजा-धजा कमरा, आकर्षक फर्नीचर, दरी, चित्र, यान्त्रिक शक्ति के साधन, बालक का स्वच्छन्द विचारण, घूमना-फिरना, प्रबोधक साहित्य अर्थात पढ़कर समझ विकास करने का साहित्य आदि ऐसे साधन है जो माण्टेसरी शाला का वातावरण रचते हैं| इसलिए माण्टेसरी शाला को गिजुभाई ने मानव प्रयोगशाला या आनन्द की प्रयोगशाला कहा है।

2. शिक्षक

गिजूभाई ने शिक्षक के व्यवसाय को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है- "किसी भी व्यवसाय के जुड़ने वाले व्यक्ति में उससे सम्बन्धित योग्यता होनी चाहिए| योग्यता विहीन-व्यक्ति व्यवसाय में टिक नहीं सकता| संसार में अनेक व्यवसाय हैं, पर एक भी व्यवसाय ऐसा नहीं है जो शिक्षक की व्यवसाय की तुलना में टिक सके| शिक्षक का व्यवसाय अतीत और वर्तमान को जोड़ता है तथा वर्तमान में जीवंत रहकर भविष्य का गठन करता है अर्थात शिक्षक का व्यवसाय समाज-जीवन, समाज-शास्त्र और समाज की भविष्य को निर्मित करने

वाला व्यवसाय है|" गिजुभाई मानते थे कि कोई भी शैक्षिक नवाचार शिक्षा के बिना सम्भव नहीं है| बालक-बालिकाएं अगर उनके आराध्य थे तो शिक्षक-शिक्षिकाएं गिजुभाई की आस्था| शिक्षा रहित शाला की तो वे कल्पना भी नहीं करते थे| बल-मन्दिर हो या प्राथमिक शाला, 'आचार्य' या 'शिक्षक' संस्था के प्राण के समान हैं| गिजूभाई ने शिक्षकों पर विचार कर पृथक से अपनी कल्पना का शिक्षक सोचा है| उनके अनुसार शिक्षक, मालिक या अफसर को खुश करने वाले न होकर बालक-बालिकाओं के खुशी के शिक्षक होने चाहिए| शिक्षक और बच्चों के बीच डर के बजाय प्रेम का सम्बन्ध हो, अधिकारों के उपयोग के बजाय आत्मीयता और मधुरता के सम्बन्ध हो और शिक्षक बच्चों के साथ मित्रवत व्यवहार करें एवं उनके कामों में मित्र की ही तरह भागीदार बनें| गिजुभाई शिक्षक को बच्चों की सहयोगी और मित्र के रूप में देखते हैं| उनके अनुसार शिक्षण के निम्नलिखित गुण होने चाहिए-

- शिक्षक में गहन अवलोकन की क्षमता होनी चाहिए।
- शिक्षक को धैर्यवान होना चाहिए| बालकों को सीख देने के बजाय उसमें बालकों से सीखने की प्रवृत्ति होनी चाहिए| वह बालकों की उतनी ही सहायता करें, जितनी अपेक्षित है क्योंकि अनावश्यक सहायता बालक के विकास में बाधक बनती है।
- वाणी का संयम शिक्षक का अन्य गुण है जहाँ तक सम्भव हो वह मौन कठोर व्रत को धारण करें| जहाँ आवश्यक हो, वहीं वाणी का प्रयोग करें।
- शिक्षक का एक महत्वपूर्ण गुण है कि बालक के व्यक्तित्व के प्रति वर्ष में अगाध विश्वास हो, गहरी सहानुभूति हो तथा वह बच्चों को सदैव प्रेरणा व प्रोत्साहन दें, जिससे अभिप्रेरित होकर बालक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

3. विद्यार्थी

गिजूभाई कहते थे कि बच्चे चाहे बाल-मन्दिर में हों या प्राथमिक शालाओं में, वे कोरी स्लेट की तरह कभी नहीं होते| उनके पास अपना बाल-व्याकरण होता है, अपनी भाषा होती है, अपना शब्द भण्डार होता है तथा

अपना गणित होता है| बच्चे अपना खेल स्वयं खोज लेते हैं| खेल के कोई उपकरण न हो तो भी वे खेल खोज लेते हैं, उसके नियम बना लेते हैं और अपने -ही निर्णय से उन्हें भी खेल लेते हैं|

अतः बालक एक सम्पूर्ण मनुष्य है, उसमें बुद्धि है, भावना है, भाव है तथा उसका अपना एक जीवन है| बालक में विकास की अनेक विशेषताएं और सम्भावनायें हैं जिसका विकास स्वतंत्र वातावरण में ही सम्भव है| अतएव बालक की रुचियों और इच्छाओं को महत्व प्रदान किया जाना चाहिए तथा बालकों के साथ विनम्रता और प्रेम का व्यवहार किया जाना चाहिए| इस सम्बन्ध में माण्टेसरी ने कहा है कि- "बालक एक शरीर है जो बढ़ता है, एक आत्मा है जो विकसित होती है| विकास के इन दोनों स्वरूपों को न तो हमें ग्रुप बनाना चाहिए और न ही दबाना चाहिए, बल्कि उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब किसी शक्ति का क्रमानुसार प्रकटीकरण हो|"

4. पाठ्यक्रम

गिजूभाई ने अपने शिक्षण का विधान बालकों को केन्द्र में रखकर किया है| वह स्वतंत्र एवं स्फूर्ति को ही शिक्षा मानते हैं और कहते हैं कि बालक को क्या पढ़ना चाहिए और क्या नहीं पड़ना चाहिए, बालक के लिए क्या उचित है तथा क्या अनुचित है, क्या धर्म है तथा क्या अधर्म है, इसका निर्णय में नहीं कर सकता| मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि बाल-शिक्षा की व्यवस्था अपने-आप चलेगी और बालक स्वत: ही शिक्षित होगा बशर्ते कि बालक को सीखने के लिए उचित वातावरण एवं साधन उपलब्ध करा दिया जाए| गिजुभाई अपने पाठ्यक्रम में इन्द्रियों के प्रशिक्षण पर विशेष बल देते हैं| वे कहते थे कि इन्द्रियां महल के झरोखे हैं जिनसे बाह्य जगत का ज्ञान अन्दर जाता है और अन्दर विद्यमान रहने वाली शक्तियां बाहर आती हैं|

माण्टेसरी की भाँति गिजूभाई विभिन्न विषयों का पुस्तकीय अध्ययन नहीं कराते थे बल्कि ऐसी पद्धति निर्मित कर देते थे, ऐसे साधन उपलब्ध करा देते थे कि बालक स्वयं अपनी इन्द्रियों का विकास करके विषय से सम्बन्धित योग्यता प्राप्त कर लेते थे| इस प्रकार उनकी शिक्षण-पद्धति नेत्रों की शिक्षा द्वारा रूप एवं रंग का रहस्य समझने का द्वार खोलती है| स्पर्श के शिक्षण द्वारा प्रकृति के कठोर-मुलायम, चिकनी-खुरदरी, गरम-ठण्डा इत्यादि समप्रत्ययों को समझने की शक्ति मिलती है| संगीत की देवी कानों में प्रवेश करके ज्ञान का

मन्दिर खोल देती है तथा मनुष्य की शक्तियों को विकसित करके उसे स्वयं को जानने का अवसर देती है| गिजूभाई के शिक्षण -विधि से व्यक्ति सीधे ही चित्रकार या गायक नहीं बन जाता और न ही वह सीधे कवि, लेखक या गणितज्ञ, बन जाता है परन्तु जीवन की किसी भी दिशा में जाने के लिए उसका सरल से सरल मार्ग प्रशस्त हो जाता है|'

बालकों की सृजनात्मक क्षमता में दृढ़ विश्वास होने के कारण गिजुभाई बालकों को प्रकृति के प्रांगण में ले जाने, वहाँ उनको प्रकृति की गोद में घण्टों लोटने देने, बन्दरों की भाँति पेड़ पर चढ़ने व कूदने देने, कल-कल बहती नदी के किनारे ले जाकर उन्हें अपनी अंजलिओं से जी भर कर पानी पीने देते, जंगली फूलों को तोड़कर उनकी मालायें बनाने, देशों से रस्सी बनाने और ऐसे ही भाँति-भाँति के काम करने देने की व्यवस्था अपने पाठ्यक्रम में किए हैं| उनका कहना है कि हर बच्ची-बच्चा यदि स्वप्नदर्शी है तो वह सृर्जन भी कर सकता है| इसलिए प्राथमिक शालायें बच्चों की हवन शालायें न बनें| मिट्टी, लकड़ी, कागज व वस्तुओं से कारीगरी करना तथा चित्र बनाना बालकों के लिए आवश्यक है| अतः गिजुभाई बच्चों में क्रियात्मक एवं भावात्मक शिक्षण के लिए कला एवं कारीगरी की शिक्षा पर भी विशेष बल दिया है।

गिजूभाई के विचार से पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे समाज और व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्कूल के पाठ्यक्रम का विकास, व्यक्तिगत विभिन्नताओं, प्रेरणा, मूल्यों और सीखने के सिद्धांतों के मनोवैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होना चाहिए| पाठ्यक्रम बनाते समय शिक्षक यह ध्यान रखता है कि शिक्षार्थी के क्रियाओं से ये आवश्यकताएं सर्वोत्तम रूप से पूर्ण हो सकती हैं| भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में तथा विभिन्न स्तरो पर कुछ सीखने की क्रियाएं वांछनीय हो सकती हैं और कुछ अवांछनीय, यह निश्चित करने में शिक्षक को विकास की विभिन्न स्थितियों का मनोवैज्ञानिक ज्ञान होना चाहिए| गिजुभाई ने अपनी बाल-केन्द्रित शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नांकित विषयों को स्थान दिया है-

- कविता शिक्षण, कहानी शिक्षण
- व्याकरण शिक्षा
- इतिहास, भूगोल शिक्षण तथा गणित शिक्षण

- चित्रकला और खेलकूद शिक्षण
- धार्मिक शिक्षा

गिजूभाई का यह पाठ्यक्रम प्राथमिक स्तर तक सीमित है| गिजूभाई ने इसे बाल केन्द्रित शिक्षा के नाम से प्रकाश में लाया है।

5. शिक्षण विधि

गिजूभाई मानते थे कि व्यक्ति-व्यक्ति के विचार में विभिन्नता प्रकृतिगत होती है| सिद्धान्त समान होने पर भी व्यक्ति के आधार पर पद्धतियां अलग ढंग से अपनाई जा सकती है| यह भी कहा जा सकता है कि जितने पढ़ने वाले होंगे उतनी ही पद्धतियां होंगी, किन्तु पद्धतियों की भिन्नता से होने वाले परिवर्तन बहुत अधिक भिन्न नहीं होंगे| मनोविज्ञान के अध्येत्ताओं ने शिक्षा के व्यापक अनुभव के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का संयोजन किया है| आजकल शिक्षा के क्षेत्र में किन-किन पत्तियों का उपयोग किया जा रहा है, उन से क्या लाभ- हानियां है, इन सब बातों का विस्तृत विवेचन गिजूभाई निम्नलिखित शिक्षण पद्धतियों के माध्यम से किया है|

व्याख्यान विधि

इसे उपदेशात्मक पद्धति भी माना गया है| इस पद्धति में शिक्षक शिष्य छात्र के भोजन को खुद चबा देता है| इसका मतलब यह हुआ कि इस पद्धति में शिक्षक शिष्य के बदले उसके सारे काम करता रहता है और शिष्य स्वयं बिना कुछ किए ही शिक्षा का मात्र परिणाम ही बटोरता है| इसमें शिक्षक की भूमिका नौकर की और छात्र की भूमिका सेठ की बन जाती है| शिक्षक इस प्रकार स्वयं सब कुछ कर के शिष्य के दिमाक रूपी पेट में ज्ञान-रूपी खुराक पहुंचाने का व्यर्थ प्रयत्न करता है| इस पद्धति में हमेशा शिक्षक अपने आप हिसाब इस प्रकार लगाता है कि उसने शिष्य को किया सिखाया और उसके दिमाग में कौन-कौन सी चीजें ठूँस दी, शिष्य क्या सीखा इसका कुछ हिसाब शिक्षक के पास नहीं रहता| इस पद्धति में बोलने के अलावा कोई अन्य रीति अपनाई नहीं जाती| इस प्रकार यह छात्रों को सुनाने का काम करती है और इसलिए वह एक इन्द्रिय के उपयोग

अर्थात कान के उपयोग की प्रणाली है| इससे छात्रों की अन्य इन्द्रियों का विकास रुक जाता है और स्मरण शक्ति पर अधिक बोझ आ जाता है|

दूसरा दोस्त इस पद्धति का यह है कि इसमें शिक्षक छात्रों से एकाग्रता की उम्मीद करता है और यह मान लेता है कि उसने जो कुछ कहा और छात्रों ने समझ लिया है| इसमें छात्रों की रुचि एवं अरुचि का कोई स्थान नहीं है| बालक निष्क्रिय होकर लम्बे समय तक एकाग्र नहीं रह सकते इसलिए इस पद्धति का परिणाम अन्ततः रटने-रटाने में प्रकट होता है| इस पद्धति में प्रयोगों, खोजों, जिज्ञासा, प्रश्नों, स्वतंत्रता आदि का कोई ध्यान नहीं है और शिक्षक अपने को ज्ञान का कोष समझते हैं, जो निष्क्रिय है और तिजोरी में रखे धन की तरह जड़ है|

तीसरा दोस्त यह भी है कि इसमें शिक्षक कक्षा की व्यवस्था, प्रश्न करने की सुविधा, अनुशासन आदि के अपने नियम बालकों पर थोपता है और बच्चे श्यामपट्ट, पुस्तकें, बस्तुएं नक्शे, शब्दकोश, चित्र, खेल एवं प्रयोगों से सीखने की क्रिया से वंचित हो जाते हैं|

गिजूभाई इस पद्धति को प्राथमिक शाला के स्तर पर अपनाने के सख्त विरोधी थे और मानते थे कि इसे त्यागने में शिक्षक का शिक्षकत्व निहित है।

प्रश्नोत्तर विधि

चूँकि व्याख्यान पद्धति खुद काम करने, अनुभव प्राप्त करने, स्वयं सीखने की प्रवृत्ति पर रोक लगाकर स्मरण शक्ति पर बोझ बनती है| इसलिए गिजुभाई प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर प्रश्नोत्तर प्रणाली उपयुक्त मानते थे, भले ही उच्च शिक्षा में व्याख्यान पद्धति अपना लिया जाय, मगर व्याख्यान भी यदि प्रश्नोत्तर के अवसर देकर हो तो उच्च कक्षाओं के लिए ठीक है| व्याख्यान पद्धति में दूसरों के निर्णय मानने होते हैं| इस कारण बुद्धि का विकास नहीं हो पाता जबकि प्रश्नोत्तर पद्धति में यह दोष नहीं है| प्रश्नोत्तर पद्धति की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

- प्रश्नोत्तर पद्धति में विद्यार्थी को समस्या खुद ही सुलझानी पड़ती है|
- बुद्धि और तर्क शक्ति का विकास होता है|
- विद्यार्थी निष्क्रिय स्रोता बन कर नहीं रहता, बल्कि उत्तर के लिए सक्रिय होता है|

- स्वयं क्रिया करने की प्रवृत्ति का विकास होता है|

जोड़ीदार पद्धति

जोड़ीदार पद्धति में बालक टुकड़ियों में बटकर एक-दूसरे को सिखाते हैं| विद्यार्थी स्वयं अपनी जोड़ियाँ बना लेते हैं| शिक्षक सर्फ कुछ आवश्यक साधन उपलब्ध करा देते हैं| इसमें जोड़ी में छात्र रुचि के अनुरूप विषय,पुस्तक,अध्ययन-समय,टोपिक आदि तय करते हैं, कठिनाइयाँ स्वयं जोड़ी में या अन्य जोड़ी से मिलकर हल करते हैं या शिक्षक की सहायता लेते हैं| विद्यार्थी में यह आत्मविश्वास पैदा होता है कि वह केवल सीख ही नहीं बल्कि सिखा भी सकता है| इस पद्धति में विद्यार्थी सतत व्यस्त रहते हैं| बहुकक्षा अध्यापकीय विद्यालय के लिए यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी है| इसमें शिक्षक स्वयं अलग-अलग जोड़ियों में जोड़ीदार बनते हैं जिससे विद्यार्थी के सीखने की गति व प्रगति का भी मूल्यांकन होता जाता है| इस पद्धति से विद्यार्थी स्वावलम्बी बनते हैं|

नाट्य-प्रयोग पद्धति

मनोविज्ञान के अनुसार बच्चों में अनुकरण की पद्धति सहज होती है यह वृद्धि दूसरी प्रेरणाओं के समान एक प्रेरणा है| बालक जो कुछ देखते हैं, उसे स्वयं अनुभव करने के लिए उत्सुक रहते हैं| जो घटनाएं अथवा खेल उनके सामने होते हैं, उन्हें अभिनय द्वारा वे तरह-तरह से प्रकट करते हैं| गुड्डा-गुड्डी, गाड़ी-गाड़ी, घर-घर, दुकान-दुकान के खेल खेलते हुए बालक अपनी अनुकरण और अभिनय प्रवृत्ति को जाहिर करते हैं| यह वास्तव में छोटे-छोटे नाट्य-प्रयोग ही हैं|

नाट्य-प्रयोग पद्धति से बच्चों को एक साथ अनेक बातें सीखने का अवसर मिलता है| जैसे-

- घटी घटनाओं और दृश्य का उपयोग करना सीखते हैं
- कल्पना शक्ति और सज्जन शक्ति का पोषण होता हैं|
- शिक्षक के निर्देश बिना शरीर और मन की शक्तियों का विकास होता है|
- अवलोकन क्षमता में सूक्ष्मता आती है|

- कल्पनिक ज्ञान और विद्यालय में पढ़ने बिना अनेक बातों का ज्ञान हो जाता है।

सहयोगीकरण और पृथक्करण पद्धति

गिजुभाई ने प्राथमिक शाला के लिए इस पद्धति को अत्यन्त उपयोगी मानकर आजमाया| सहयोगीकरण का अर्थ यह है कि वस्तु अथवा विषय को पहले उसकी इकाई से अलग करके सिखाने के बाद सम्पूर्ण वस्तु अथवा विषय का ज्ञान करा देने के बाद प्रथक्करण द्वारा उसके अंगों और उपांगों को अलग-अलग दिखाकर उस विषय का ज्ञान करा देना| इसे 'पूर्ण से अंश' की ओर एवं 'अंश से पूर्व' की ओर का सूत्र भी माना जाता है अक्षर ज्ञान के लिए यह दोनों पद्धतियां गिजुभाई उपयुक्त मानते थे| भाषा-शिक्षण में अक्षर-ज्ञान कराकर शब्द बनबाना या वाक्य बनबाना सहयोगीकरण है और पहले शब्द एवं वाक्य बनाकर अक्षर सिखाना प्रथक्करण है| गिजूभाई हिंदी एवं गुजरात जैसी उच्चारण ध्वनि प्रधान भाषाओं के लिए मूलाक्षर सिखाने के लिए सहयोगीकरण को उचित मानते थे, जो माण्टेसरी ने भी किया था| भाषा, व्याकरण, भूगोल एवं गणित शिक्षण में गिजुभाई ने इस पद्धति का प्रयोग किया था।

दृष्टान्त मूलक पद्धति

आमतौर पर विद्यालयों में पहले सिद्धान्त बताकर फिर दृष्टान्त दिए जाते हैं या व्याख्यान दिया जाता है| इससे सिद्धान्त बिना समझे रट लिए जाते हैं और उदाहरण भी रट लिए जाते हैं| शिक्षक द्वारा पहले दृष्टान्त देने के पश्चात सिद्धान्त निरूपण जब बच्चे स्वयं करते हैं तो वे जल्दी सीखते हैं तथा इससे बच्चों को निम्नलिखित लाभ मिलता है-

- बच्चों में तर्क शक्ति का विकास होता है|
- विषय प्रतिपादन करना सीखते हैं|
- दृष्टान्तों से सिद्धान्त की खोज करते हैं|
- तुलना करना सीखते हैं|
- प्रयोग करना सीखते हैं|

- इस प्रकार दृष्टान्त मूलक पद्धति अपनाकर इतिहास, भूगोल, विज्ञान, व्याकरण जैसे विषयों को अधिक अच्छे ढंग से सीखा जा सकता है।

त्रिपड पद्धति

गिजूभाई कहते थे कि इस पद्धति में बालक की जिज्ञासा बढ़ती है और बालक हमेशा यह क्या है? यह क्या है? पूछकर अपने अनुभवों का विस्तार करता है| इसके तीन मुख्य पद या कदम हैं- कदम-1. वस्तुओं की संज्ञा के साथ जोड़ना|

कदम-2. संज्ञा का नाम लेकर वस्तु के परिचय को पुष्ट करना|

कदम-3. इस बात का निश्चय करना कि वस्तु संज्ञा का ज्ञान हुआ कि नहीं|

इस विधि में रंगों का ज्ञान, तुलना, अक्षर ज्ञान, संयुक्त अक्षर ज्ञान और प्राप्त ज्ञान को पुष्ट करने की वृत्ति का जल्दी विकास होता है।

प्रत्यक्ष पद्धति

गिजुभाई ने इस पद्धति का भाषा-शिक्षण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना है| अंग्रेजी में यह पद्धति 'डायरेक्ट मेथड' कहलाती है| कई लोग ऐसे 'डू एवं से मेथड' यानी 'करो और कहो' विधि भी कहते हैं इस पद्धति का अर्थ है- क्रिया को करते समय क्रिया वाचक शब्द या वाक्य देकर पदार्थ का गुण या भाव व्यक्त करना| यह पद्धति विदेशी भाषा सिखाने के लिए बहुत उपयोगी मानी जाती है| फ्रांस की भाषा शास्त्री गुईन इस पद्धति के जनक माने जाते हैं| इस पद्धति के छात्र थोड़े ही समय में विदेशी भाषा अच्छी तरह सीख जाते हैं| यह मातृभाषा सीखने के समान ही होता है| विदेशी के अतिरिक्त मातृभाषा या प्रथम भाषा सिखाने में भी यह पद्धति उपयोगी है| इसके लिए शिक्षक का अत्यन्त कुशल होना और भाषा का अच्छा जानकार होना आवश्यक है| यह प्रवृत्ति भाषान्तर या ग्रामर, ट्रांसलेशन पद्धति पर रोक लगाती है| क्रिया, गुण, अव्यय, नाम आदि सब सीधे-सीधे टारगेट भाषा या लक्ष्य भाषा में भाषा के उपयोग से सीख जाते हैं| इसमें वस्तु, शब्द और व्याकरण, बोलने, सुनने की दक्षता व क्रियाओं का उपयोग करके भाषा के प्रति छात्र को सहज बनाया जाता है| भाषा को इसी पद्धति के जरिए सरलता से सिखाया जा सकता है।

दर्शन पद्धति

इस पद्धति को भी गिजुभाई भाषा-शिक्षण के लिए उपयुक्त मानते थे| इसे अंग्रेजी में 'बीकन मेथड' भी कहा जाता है| इस पद्धति अक्षर-ज्ञान से भाषा सिखाने के पक्ष में नहीं है| अक्षर-ज्ञान से भाषा सीखना अधिक कठिन है| अक्षर माता अर्थहीन ध्वनियाँ हैं, उनमें शब्द या वाक्य का पूरा अर्थ नहीं होता है| इसलिए यह बात पद्धति से भाषा-शिक्षण को अधिक उपयोगी मानती है| भाषा सीखने का आधार अक्षर ना होकर, वर्ण ना होकर, या वाक्य ना होना चाहिए| शब्द बोलकर और लिखकर, वाक्य बोलकर या लिखकर जब भाषा सीखी जाती है, तो भाषा जल्दी सीख ली जाती है और अक्षरों के अभ्यास पर प्रारम्भ का बहुमूल्य समय नष्ट नहीं होता| गिजुभाई मानते थे कि भाषा के वाक्य सामूहिक, वाक्यांश, शब्द व शब्द-समूह देखकर जो पूर्ण भाषा समझ बनती है, वह भाषा सीखने की ओर ले जाती है| देखकर, अनुकरण करके, कहानी- किस्से सुनकर, वार्तालाप करके, अनुलेखन करके भाषा समझकर सीखी जाती है इसलिए वाक्य-प्रणाली यानी दर्शन-प्रणाली या बीकन प्रणाली प्राथमिक स्तर पर अत्यन्त उपयोगी है।

योजना पद्धति

इस पद्धति का जन्म अमेरिका में हुआ जीवन व्यवहार से तालमेल बैठाने के लिए गिजुभाई ने इस पद्धति को उपयोगी माना पंजाब के मोगा नगर ईसाई मिशनरियों ने इस पद्धति का सही प्रयोग किया था इसमें पढ़ाई केवल पुस्तक ही बनकर नहीं रहती योजना पद्धति पहले किसी प्रश्न से शुद्ध होती है इस प्रश्न को हल करने में कई अन्य प्रश्न खड़े हो जाते हैं इन प्रश्नों के हल खोजने में प्रोजेक्टर या योजना पद्धति काम में लाने हैं यह अनुभव सिद्ध प्रक्रिया है इसमें पहले कोई प्रस्ताव रखा जाता है जैसे क्या हम एक पतंग बनाएंगे इस प्रकार को प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद मिल जुलकर योजना बनाई जाती है योजना का विवरण सोचा जाता है इसके लिए आपस में विचार-विमर्श प्रश्न उत्तर होते हैं आवश्यक सामग्री और कीमत तय की जाती है चीजों की उपलब्धता कहां से कहां और कैसे तय की जाती है सूची बनाई जाती है पतंग बनाने के तरीके मालूम करके आजमाए जाते हैं अंत में पतंग कैसे बनी और बनी हुई वतन के उपयोग आदि दिए जाते हैं इस प्रकार

बालक प्रोजेक्ट के द्वारा सीखने की एक पद्धत संपूर्ण प्रक्रिया अपनाकर संसाधन संपन्न होते हैं और खोज जानकारी के लिए प्रेरित होते हैं जो भाई इस पद्धति को सर्वाधिक बार पति मानते थे।

किण्डरगार्टन पद्धति

प्राथमिक शाला से पूर्व बाल मंदिरों के लिए गिजुभाई ने इस प्रणाली को अत्यन्त उपयोगी माना है केंद्र का अर्थ है बालाघाट बटन का अर्थ है भाग एस्ट्रोलॉजी किससे सुप्रो बेलने वॉलवाड़ी पद्धति का विकास कर बच्चों को शिक्षकों के तत्कालीन जंगली पद से मुक्त खिलाई थी फिर वैलनेस पद्धति के अन्तर्गत एकता आंतरिक विकास और पारिस्थितिकी सम्बन्ध को मनोज से एवं प्रकृति के सम्बन्धों के साथ रहकर रखकर यह सिद्ध किया था कि इन तीनों तत्वों से बच्चों में प्रत्यक्ष समाज के साथ-साथ शारीरिक और मानसिक विकास होता है सामूहिक शिक्षा व्यवस्था इस प्रणाली का गोल है गतिविधियां शिक्षक प्रेरित होती हैं जिसमें बालकों की रुचि का ध्यान रख खा जाता है इस पद्धति में समय चक्र और पाठ्यक्रम के प्रति रुचि जगह पर सिखाने की भी व्यवस्था है किंडर गार्डन के अनुसार बच्चे लंबे समय तक एकाग्र चित्त नहीं रह सकते थोड़े थोड़े काम के बाद बच्चों में आराम हुआ उत्तेजना जगाना आवश्यक है बात का प्रशन कहानी कला प्रकृति और प्राणियों से परिचित दिए आदि इस प्रणाली के मुक्तक हैं किंतु केसरी की भाँति की दृष्टि से यह पद्धति बालक को स्वतंत्र हुआ स्वाधीन नहीं बनाती है।

6. अनुशासन

गिजुभाई कहते थे कि शिक्षा संगोष्ठी में एक ही बात सुनाई देती है कि बच्चों में अनुशासन तथा चरित्र बल नहीं रह गया है लेकिन इसे अनुशासनहीनता और चरित्र हीनता का क्या कारण है इस पर ध्यान नहीं दिया जाता वास्तव में इस अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण है आज की शिक्षा पद्धति क्रिया शक्ति का अभाव बालक को क्रियाना करने देना अपितु स्वयं करना बालक को पढ़ाने ना देना अपितु स्वयं पढ़ाना बालक को सोच लेना देना अपितु अपने विचार भावना गिजूभाई ने इस बाल मनोविज्ञान का अत्यंत अज्ञानता पूर्वक अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चा मधुमक्खी की तरह है जो एक फूल से दूसरे फूल जा कर बैठती है अब तक कि उसे वह फूल नहीं मिल जाता जहां से वह शहद ग्रहण कर संतुष्ट है जब तक बच्चों को

अपने अन्दर आश्चर्यजनक स्वभाव क्रियाशीलता के जाग्रत होने का अनुभव न हो जिससे उसके चरित्र और मस्तिष्क का निर्माण होना है जब तक काम जब तक वह काम नहीं कर सकेगा ऐसी अस्थिरता परिस्थिति में शिक्षक के उचित मार्ग निर्देशन द्वारा जब बच्चे का आंतरिक व्यवस्था आन्तरिक व्यक्तित्व जागृत होता है तो विभिन्न क्रियाओं को करते समय उनका ध्यान किसी वस्तु की ओर केन्द्रित हो जाता है और उस वस्तु के प्रति आनंदित होने लगता है प्रत्येक बच्चे में स्वाभाविक रूप से गतिविधि करने की आत्मक प्रवृत्ति होती है यदि उसके मस्तिष्क की रचना का कोई अवसर नहीं मिलता तो उसका मस्तिष्क रह जाता है जो कई दोषों का मूल होता है भाई की पथ प्रदर्शक मुंडेश्वरी ने ही सर्वप्रथम स्वतंत्र देकर शासन स्थापित करने की अवधारणा विकसित की है उनका मानना था कि यदि बच्चे के विकास हेतु उपयुक्त प्रवेश का निर्माण कर के बच्चे को स्वतंत्र पूर्वक कार्य करने एवं व्यवस्थित ढंग से काम चुनने का अवसर दिया जाए तो बच्चे स्वता ही अनुशासन की भावना का विकास हो जाता है बच्चे को जैसे ही अपनी रूचि के अनुसार काम मिल जाता है तो उसके अन्तर एक अद्भुत आनन्द की अनुभूति होती है और उसके सारे दोष मिट जाते हैं उससे एक शान्त और शक्तिशाली चरित का निर्माण होता है जो अपने चारों ओर प्रेम करता है और साथ ही उसमें त्याग नियमित करने और आज्ञा पालन की भावना उत्पन्न होती है इस प्रकार नए प्रवेश की आकर्षक बच्चों को मोहित करते हैं तथा बच्चे को रचनात्मक क्रियाकलापों के लिए प्रेरणा मिलती है जिससे उसके शरीर की सभी उड़ जाएं एकजुट होकर काम करने लगती हैं और बच्चे की अनुशासनहीनता दूर हो जाती है गिजुभाई ने स्वतंत्र को बहुत सी मैडम एवं प्राथमिक रूप से समझा है उनके अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ है असहाय बन्धुओं के बन्धुओं से तत्काल मुक्ति अर्थात दादा डपट और अधीनता का अन्त इसमें दवा और जबरदस्ती को हटाने की बात कही गई है इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे ऊपर भी हो जाते हैं सच्ची स्वतंत्र विकास का ही परिणाम है यह बच्चे में उसका संचालन करने की आंतरिक अन्तर्निहित क्षमता का विकास है जो शिक्षा की सहायता से ही सम्भव है विकास में सक्रिय होती है विकास अपने प्रयास और अनुभव द्वारा प्रयुक्त व्यक्तित्व की रचना करना यह वह लम्बा मार्ग है जिस पर बच्चे को प्रवक्ता प्राप्त करने के लिए चलना जरूरी है अतः हमें क्रियाकलापों के द्वारा ही प्रेरणा प्रस्तुत करनी होगी जिसके प्रति बच्चे में इतनी रुचि हो कि उसका ध्यान पूर्णता केंद्रित हो सके तथा उसका अत्यन्त व्यक्तित्व में लीन हो जाए विजू भाई बच्चों में दम

नाथ मकान शासन के बजाय शुक्रिया एवं स्व प्रेरणा द्वारा अनुशासन की स्थापना पर बल देते हैं बच्चों को अनुशासित रखने के लिए इस प्रकार का वातावरण तैयार करना चाहिए कि बच्चे उद्दंडता गलत कार्य बुराइयों से दूर रहें उनकी दृष्टि से सच्चे अनुशासन का विकास भावात्मक विधि द्वारा ही किया जा सकता है वे बच्चों को शुद्ध प्रकृति वातावरण और सामाजिक पर्यावरण में रखने पर बल देते थे उन्हें विश्वास था कि इस प्रकार के पर्यावरण में बच्चों अनुकरण द्वारा आदर्श एवं उच्चरण को किरण करेंगे यदि बच्चे गलत रास्ते पर चलें तो उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए अध्यापकों को आत्मबल का प्रयोग करना चाहिए उनके अनुसार हमें बच्चों को अपना स्वाभाविक विकास करने की स्वतंत्रता तो देनी चाहिए पर इसके साथ-साथ उन्हें कुछ उत्तरदायित्व भी सौंप देना चाहिए सभी उनका व्यवहार संतुलित हो सकता है|

यशपाल जी का जीवन दर्शन एवं शैक्षिक विचार

3.1 यशपाल जी का जीवन परिचय

प्रोफेसर यशपाल (जन्म: 26 नवम्बर 1926, मृत्यु: 24 जुलाई2017) भारतीय शिक्षाविद व वैज्ञानिक थे। उनका जन्म 26 नवम्बर,1926 को झांग (पाकिस्तान के पंजाब प्रान्तका एक शहर) में हुआ था। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से 1959 में भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर तथा 1958 में मैसाचुसैट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी से भौतिकी में ही पीएचडी की उपाधि प्राप्त की थी। यशपाल ने अपने कैरियर की शुरूआत मुम्बई स्थित टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान से शुरू किया था। वर्ष 1973 में वे केन्द्र सरकार द्वारा अहमदाबाद स्थित अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र के पहले निदेशक नियुक्त हुए थे। वे 1983 से 1984 तक योजना आयोग में मुख्य सलाहकार व 1984 से 1986 तक विज्ञान व तकनलाजी विभाग में सचिव के रूप में अपनी सेवाएँ दे चुके हैं। वे वर्ष 1986 से 1991 तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष थे। और वर्ष 2007-12 तक वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। वे दूरदर्शन पर अत्यन्त चर्चित विज्ञान कार्यक्रम टर्निंग प्वाईंट में भागीदारी व विज्ञान को साधारण शब्दों में आम जनता तक पहुँचाने के प्रयासों के कारण लोकप्रिय रहे थे। वे भारत की छाप जैसे टीवी के विज्ञान कार्यक्रमों के सलाहकार मण्डल में भी शामिल रहे थे।

यशपाल को भारत सरकार द्वारा सन 1976 में विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के क्षेत्र में पद्म भूषण तथा वर्ष 2013 में पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया था। इसके अलावा उन्हें वर्ष 2009 में लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय पुरस्कार एवं कलिंग पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था। प्रोफेसर यशपाल मानते थे कि प्रश्न करना मनुष्य होने का प्रमाण था इसलिए वे शिक्षकों से कहा करते थे कि बच्चों का पूछा कोई भी प्रश्न पाठ्यक्रम से बाहर नहीं है| 24 जुलाई, 2017 को जब प्रोफेसर यशपाल को आख़िरी बार देखा तो लगा कि जीवन से विदा लेते समय शायद उनको कोई पछतावा नहीं रहा होगा| इस शरीर ने और उसके हर एक अंग ने वह हर काम पूरी तरह कर लिया था जिसकी उससे उम्मीद थी| आंखों ने देखा और अन्तरिक्ष की गहराइयों में

झांककर कर दूर-दूर तक देखा, पैरों ने अनन्त दूरियां तय कीं, हाथों ने ऐसी चीज़ें बनाईं जिन्हें बनाना मुश्किल था, उस वक्त जब हाथों और दिमाग के अलावा कल्पना को साकार करने के लिए बहुत कम बाहरी मदद मौजूद थी| दिमाग ने सोचा और खूब सोचा और कल्पना की छलांगें लगाईं| किसी भी अंग, किसी भी इन्द्रिय को इसका अफ़सोस न होगा कि उससे कुछ काम लेना बाकी रह गया है, अभी और काश कि कुछ दिन और मिल जाते! लैटिन अमरीकी कवि हिमनेज़ की आदर्श मृत्यु का यह ख़याल उन्हें सामने निश्चल देखते हुए आता ही रहा|

प्रोफेसर यशपाल ने खूब सोचा और खूब काम किया और खूब कल्पनाएं कीं| वे उस दौर के वैज्ञानिक थे जब आप एक ही साथ वैज्ञानिक और कलाकार हो सकते थे| वैसे भी यशपाल का मानना था कि जैसे इंसान एक होता है, ज्ञान भी एक है| एक कलाकार को भाषा की संवेदना अगर नहीं तो उसके आविष्कारक होने में शक है. इसीलिए वे बार-बार यह कहते थे कि आईआईटी हो या और वैज्ञानिक शिक्षण संस्थान, उसमें समाज विज्ञान, साहित्य और कला का होना और बराबरी से होना ज़रूरी है| यह बात उलट कर भी कही जा सकती है| यशपाल का काम कॉस्मिक किरणों पर था| उनके सोचने का तरीका और ज़िन्दगी को मापने का पैमाना भी एक तरह से कॉस्मिक ही था| लेकिन इस कारण वे कठोर न थे, उदार और क्षमाशील ही थे| उसके और बेहतर होते जाने और इंसान बनते जाने में उनका गहरा यकीन था| दुनिया के पास भी बेहतर होते जाने के अलावा और कोई विकल्प न था| कई बार यह सोचता रहा था कि वे ऐसे दुर्द्धर्ष आशावादी कैसे और क्योंकर हैं| उनसे बात करते हुए अहसास हुआ कि वे संतान ही थे ऐसे वक्त की जब आशा ही आशा थी और मनुष्यता में विश्वास उसकी क्षुद्रता के यथार्थ पर कहीं भारी था| उन्हें देखते हुए मुझे अक्सर भीष्म साहनी याद आ जाते थे जिनके मिजाज़ में उतना ही इत्मीनान था और जिन्होंने अपने कथा साहित्य में मनुष्यता की बुनियादी अच्छाई में इसी तरह का विश्वास गढ़ा| कोई छोटापन कर सकता है, यह सोचकर ही उन्हें तकलीफ होती थी, जैसे दूसरे की क्षुद्रता से वे भी कुछ कमतर हो जाते हों| एक घटना याद आती है| उन्होंने 2004 की स्कूली राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के निर्माण का नेतृत्व किया था और उस पर बहस चल रही थी| एक वामपंथी संस्था ने उन्हें यह कहकर बुलाया कि पाठ्यचर्या के दस्तावेज पर चर्चा होनी है| मुझे अन्दाज था कि वहां उन पर हमले के अलावा कुछ न होगा| फिर भी वे गये| वहां उन पर जिस तरह आक्रमण किया गया, उससे वे अचंभित रह गये|

लेकिन इसे उन्होंने वामपंथियों की क्षणिक जहालत मानकर झटक दिया और इस वजह से उनके बारे में आख़िरी राय कायम न की| हिंसा भी उनके हिसाब से एक तरह की इंसानी जहालत का ही नतीजा थी| मैं उनसे मजाक किया करता था कि मूर्खता को इसी वजह से गम्भीरता से लिया जाना चाहिए क्योंकि उसके नतीजे घातक हो सकते हैं. लेकिन शायद उन्होंने अपने लम्बे जीवन में मूर्खता के अनेक प्रकार देखे थे और उसे झेलने और उसके बावजूद जीने का एक सहारा हास्य बोध था| हास्य बोध इसी कारण दोनों में बहुत तीव्र था| आप यह कह सकते हैं कि यशपाल हों या भीष्म साहनी, ये गाँधी-नेहरू युग की संतान थे| नेहरू में एक तरह का अधैर्य, मूर्खता और फूहड़पन को लेकर था लेकिन गाँधी उसे भी मनुष्यता का हिस्सा ही मानते थे| बिना यह माने उससे संघर्ष करना सम्भव न था| गाँधी के लिए इस संघर्ष में एक बड़ा सहारा हास्य था| उन्होंने कहा भी था कि अगर उनमें हास्य बोध न होता तो उनका जीना कठिन था|

जीवन के प्रति आशा, इंसान की बुनियादी अच्छाई के आखिरकार उभर आने का विश्वास उन्हें लगातार सक्रिय रखता था| सम्भवतः इस वजह से बालिगों से अधिक वे बच्चों से बात करना पसन्द करते थे| नीति निर्माण सम्बन्धी विचार-विमर्श के मौके पर भी वे आयोजकों से आग्रह करते थे कि क्या कुछेक घण्टे उस इलाके के बच्चों के साथ बातचीत के लिए निकाले जा सकते हैं| यशपाल के कद के किसी वैज्ञानिक या लेखक अथवा कलाकार ने बच्चों के लिए अपनी जिन्दगी का इतना बड़ा हिस्सा शायद ही निकाला हो| वे उनसे सवाल आमंत्रित करते थे| और फिर, उन्हीं के मुताबिक़ उन पर सोचने की कोशिश करते थे| सवाल के एक ठीक-ठीक उत्तर से अधिक महत्त्वपूर्ण उस पर सोचने की यह कोशिश और उसकी प्रक्रिया है| प्रश्न करना उनके लिए मनुष्य होने का प्रमाण था| इस कारण अपने शिक्षा सम्बन्धी दस्तावेजों में उन्होंने बच्चों के सवाल करने के अधिकार की हिफ़ाजत की गारंटी करने की वकालत की| कक्षा में और बाहर उन्हें सवाल करने दो| शिक्षकों से उन्होंने कहा, कोई भी प्रश्न पाठ्यक्रम के बाहर नहीं है|

भारत जैसे समाज में, जहाँ सामाजिक और धार्मिक विधानों पर प्रश्न करना पाप है, सवाल करने को बुनियादी इंसानी हक मानना क्रांतिकारी ख्याल है| सिर्फ भारत ही क्यों बाहर भी हमने ऐसी सत्ताओं के इतिहास देखे हैं जो सवाल करनेवाले को शक के दायरे में डाल देती हैं| यशपाल भारतीय राष्ट्र के उषाकाल के तरुण थे| इसलिए इस राष्ट्र और उसकी मानवीय सम्भावनाओं को लेकर वे कभी निराश नहीं हुए| लेकिन

उन्होंने यह देखा था कि यह राष्ट्र किस इंसानी जद्दोजहद से बना और उसे किस इंसानी संकीर्णता से लड़ना पड़ा| इसी कारण वे राष्ट्र के उस विचार से सहमत नहीं हो सकते थे जो इंसान को आज़ाद करने और उसे एक बड़ी मनुष्यता का सदस्य बनाने की जगह संकीर्ण दायरे में कैद करता हो और सिर्फ एक के प्रति ही वफादार मानता हो| इंसान की खुदमुख्तारी और उसकी स्वायत्तता उनके लिए बड़ा मूल्य थी| उस पर किसी तरह की पाबन्दी से उन्हें उलझन होती थी| यशपाल को ऐसा लगता था कि हिंसा और संकीर्णता कुदरत के तौर-तरीकों को न समझने की वजह से होती हैं| इसीलिए समझ उनका प्रिय शब्द था| प्रत्येक शैक्षिक प्रयास इस समझ को बढ़ाने के लिए होना चाहिए| और समझने की शक्ति हर किसी में है|

यशपाल कहा करते थे कि हमारा मकसद बच्चों में समझ का चस्का पैदा करने का होना चाहिए| एक बार उन्हें यह चस्का लग गया, फिर तो हर मुश्किल सफ़र उनके लिए मजेदार हो जाएगा|

4.2 यशपाल जी का जीवन दर्शन

यशपाल का जन्म 3 दिसम्बर 1903 को पंजाब में, फ़ीरोज़पुर छावनी में एक साधारण खत्री परिवार में हुआ था। उनकी माँ श्रीमती प्रेमदेवी वहाँ अनाथालय के एक स्कूल में अध्यापिका थीं। यशपाल के पिता हीरालाल एक साधारण कारोबारी व्यक्ति थे। उनका पैतृक गाँव रंघाड़ था, जहाँ कभी उनके पूर्वज हमीरपुर से आकर बस गए थे। पिता की एक छोटी-सी दुकान थी और लोग उन्हें 'लाला' कहते-पुकारते थे। बीच-बीच में वे घोड़े पर सामान लादकर फेरी के लिए आस-पास के गाँवों में भी जाते थे। अपने व्यवसाय से जो थोड़ा-बहुत पैसा उन्होंने इकट्ठा किया था उसे वे, बिना किसी पुख़्ता लिखा-पढ़ी के, हाथ उधारू तौर पर सूद पर उठाया करते थे। अपने परिवार के प्रति उनका ध्यान नहीं था। इसीलिए यशपाल की माँ अपने दो बेटों यशपाल और धर्मपाल को लेकर फ़िरोज़पुर छावनी में आर्य समाज के एक स्कूल में पढ़ाते हुए अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के बारे में कुछ अधिक ही सजग थीं। यशपाल के विकास में ग़रीबी के प्रति तीखी घृणा आर्य समाज और स्वाधीनता आंदोलन के प्रति उपजे आकर्षण के मूल में उनकी माँ और इस परिवेश की एक निर्णायक भूमिका रही है। यशपाल के रचनात्मक विकास में उनके बचपन में भोगी गई ग़रीबी की एक विशिष्ट भूमिका थी।

4.2.1 क्रान्तिकारी जीवन

अपने बचपन में यशपाल ने अंग्रेज़ों के आतंक और विचित्र व्यवहार की अनेक कहानियाँ सुनी थीं। बरसात या धूप से बचने के लिए कोई हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ों के सामने छाता लगाए नहीं गुज़र सकता था। बड़े शहरों और पहाड़ों पर मुख्य सड़कें उन्हीं के लिए थीं, हिन्दुस्तानी इन सड़कों के नीचे बनी कच्ची सड़क पर चलते थे। यशपाल ने अपने होश में इन बातों को सिर्फ़ सुना, देखा नहीं, क्योंकि तब तक अंग्रेज़ों की प्रभुता को अस्वीकार करनेवाले क्रान्तिकारी आन्दोंलन की चिंगारियाँ जगह-जगह फूटने लगी थीं। लेकिन फिर भी अपने बचपन में यशपाल ने जो भी कुछ देखा, वह अंग्रेज़ों के प्रति घृणा भर देने को काफ़ी था। वे लिखते हैं, ''मैंने अंग्रेज़ों को सड़क पर सर्व साधारण जनता से सलामी लेते देखा है। हिन्दुस्तानियों को उनके सामने गिड़गिड़ाते देखा है, इससे अपना अपमान अनुमान किया है और उसके प्रति विरोध अनुभव किया|''

अंग्रेज़ों और प्रकारांतर से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी घृणा के सन्दर्भ में यशपाल अपने बचपन की दो घटनाओं का उल्लेख विशेष रूप से करते हैं। इनमें से पहली घटना उनके चार-पाँच वर्ष की आयु की है। तब उनके एक सम्बन्धी युक्तप्रान्त के किसी क़स्बे में कपास ओटने के कारख़ाने में मैनेजर थे। कारख़ाना स्टेशन के पास ही काम करने वाले अंग्रेज़ों के दो-चार बँगले थे। आस-पास ही इन लोगों का खूब आतंक था। इनमें से एक बँगले में मुर्ग़ियाँ पली थीं, जो आस-पास की सड़क पर घूमती-फिरती थीं। एक शाम यशपाल उन मुर्ग़ियों से छेड़खानी करने लगे। बँगले में रहनेवाली मेम साहिबा ने इस हरक़त पर बच्चों के फटकार दिया। शायद 'गधा' या 'उल्लू' जैसी कोई गाली भी दी। चार-पाँच वर्ष के बालक यशपाल ने भी उसकी गाली का प्रत्युत्तर गाली से ही दिया। जब उस स्त्री ने उन्हें मारने की धमकी दी, तो उन्होंने भी उसे वैसे ही धमकाते हुए जवाब दिया और फिर भागकर कारख़ाने में छिप गए। लेकिन घटना यूँ ही टाल दी जानेवाली नहीं थी। इसकी शिकायत उनके सम्बन्धी से की गई। उन्होंने यशपाल की माँ से शिकायत की और अनेक आशंकाओं और आतंक के बीच यह भी बताया कि इससे पूरे कारख़ाने के लोगों पर कैसा संकट आ सकता है। फिर इसके परिणाम का उल्लेख करते हुए यशपाल लिखते हैं, 'मेरी माँ ने एक छड़ी लेकर मुझे ख़ूब पीटा मैं

ज़मीन पर लोट-पोट गया परन्तु पिटाई जारी रही। इस घटना के परिणाम से मेरे मन में अंग्रेज़ों के प्रति कैसी भावना उत्पन्न हुई होगी, यह भाँप लेना कठिन नहीं है|'

दूसरी घटना कुछ इसके बाद की है। तब यशपाल की माँ युक्तप्रान्त में ही नैनीताल ज़िले में तिराई के क़स्बे काशीपुर में आर्य कन्या पाठशाला में मुख्याध्यापिका थीं। शहर से काफ़ी दूर, कारखा़ने से ही सम्बन्धी को बड़ा-सा आवास मिला था और यशपाल की माँ भी वहीं रहती थी। घर के पास ही 'द्रोण सागर' नामक एक तालाब था। घर की स्त्रियाँ प्रायः ही वहाँ दोपहर में घूमने चली जाती थीं। एक दिन वे स्त्रियाँ वहाँ नहा रही थीं कि उसके दूसरी ओर दो अंग्रेज़ शायद फ़ौजी गोरे, अचानक दिखाई दिए। स्त्रियाँ उन्हें देखकर भय से चीख़ने लगीं और आत्मरक्षा में एक-दूसरे से लिपटते हुए, भयभीत होकर उसी अवस्था में अपने कपड़ेउठाकर भागने लगीं। यशपाल भी उनके साथ भागे। घटित कुछ विशेष नहीं हुआ लेकिन अंग्रेज़ों से इस तरह डरकर भागने का दृश्य स्थायी रूप से उनकी बाल-स्मृति में टँक गया।'अंग्रेज़ से वह भय ऐसा ही था जैसे बकरियों के झुण्ड को बाघ देख लेने से भय लगता होगा अर्थात् अंग्रेज़ कुछ भी कर सकता था। उससे डरकर रोने और चीख़ने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं था।'

आर्य समाज और कांग्रेस वे पड़ाव थे जिन्हें पार करके यशपाल अन्ततः क्रांतिकारी संगठन की ओर आए। उनकी माँ उन्हें दयानन्द के आदर्शों का एक तेजस्वी प्रचारक बनाना चाहती थीं। इसी उद्देश्य से उनकी आरंभिक शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई। आर्य समाजी दमन के विरुद्ध उग्र प्रतिक्रिया के बीज उनके मन की धरती पर यहीं पड़े। यहीं उन्हें पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों को भी निकट से देखने-समझने का अवसर मिला। अपनी निर्धनता का कचोट-भरा अनुभव भी उन्हें यहीं हुआ। अपने बचपन में भी ग़रीब होने के अपराध के प्रति वे अपने को किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं समझ पाते। इन्हीं संस्कारों के कारण वे ग़रीब के अपमान के प्रति कभी उदासीन नहीं हो सके।

कांग्रेस यशपाल का दूसरा पड़ाव थी। अपने दौर के अनेक दूसरे लोगों की तरह वे भी कांग्रेस के माध्यम से ही राजनीति में आए। राजनैतिक दृष्टि से फ़िरोज़पुर छावनी एक शान्त जगह थी। छावनी से तीन मील दूर शहर के लेक्चर और जलसे होते रहते थे। खद्दर का प्रचार भी होता था। 1921 में, असहयोग आंदोलन के समय यशपाल अठारह वर्ष के नवयुवक थे| देश-सेवा और राष्ट्रभक्ति के उत्साह से भरपूर, विदेशी कपड़ों की होली

के साथ वे कांग्रेस के प्रचार-अभियान में भी भाग लेते थे। घर के ही लुग्गड़ से बने खद्दर के कुर्त्ता-पायजामा और गाँधी टोपी पहनते थे। इसी खद्दर का एक कोट भी उन्होंने बनवाया था। बार-बार मैला हो जाने से ऊबकर उन्होंने उसे लाल रँगवा लिया था। इस काल में अपने भाषणों में, ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी आँकड़ों के स्रोत के रूप में, वे देश-दर्शन नामक जिस पुस्तक का उल्लेख करते हैं वह सम्भवतः 1904 में प्रकाशित सखाराम गणेश देउस्कर की बाला पुस्तक देशेरकथा है, भारतीय जन-मानस पर जिसकी छाप व्यापक प्रतिक्रिया और लोकप्रियता के कारण ब्रिटिश सरकार ने जिस पर पाबंदी लगा दी थी।

महात्मा गाँधी और गाँधीवाद से यशपाल के तात्कालिक मोहभंग का कारण भले ही 12 फ़रवरी सन् 22 को, चौरा-चौरी काण्ड के बाद महात्मा गाँधी द्वारा आन्दोंलन के स्थगन की घोषणा रहा हो, लेकिन इसकी शुरुआत और पहले हो चुकी थी। यशपाल और उनके क्रांतिकारी साथियों का सशस्त्र क्रान्ति का जो एजेंडा था, गाँधी का अहिंसा का सिद्धान्त उसके विरोध में जाता था। महात्मा गाँधी द्वारा धर्म और राजनीति का घाल-मेल उन्हें कहीं बुनियादी रूप से ग़लत लगता था। मैट्रिक के बाद लाहौर आने पर यशपाल नेशनल कॉलेज में भगतसिंह, सुखदेव और भगवतीचरण बोहरा के सम्पर्क में आए। नौजवान भारत सभा की गतिविधियों में उनकी व्यापक और सक्रिय हिस्सेदारी वस्तुतः गाँधी और गाँधीवाद से उनके मोहभंग की एक अनिवार्य परिणाम थी। नौजवान भारत सभा के मुख्य सूत्राधार भगवतीचरण और भगत सिंह थे।

सके लक्ष्यों पर टप्पणी करते हुए यशपाल लिखते हैं, 'नौजवान भारत सभा का कार्यक्रम गाँधीवादी कांग्रेस की समझौतावादी नीति की आलोचना करके जनता को उस राजनैतिक कार्यक्रम की प्रेरणा देना और जनता में क्रांतिकारियों और महात्मा गाँधी तथा गाँधीवादियों के बीच एक बुनियादी अन्तर की ओर संकेत करना उपयोगी होगा। लाला लाजपतराय की हिन्दूवादी नीतियों से घोर विरोध के बावजूद उनपर हुए लाठी चार्ज के कारण, जिससे ही अंततः उनकी मृत्यु हुई, भगतसिंह और उनके साथियों ने सांडर्स की हत्या की। इस घटना को उन्होंने एक राष्ट्रीय अपमान के रूप में देखा जिसके प्रतिरोध के लिए आपसी मतभेदों को भुला देना जरूरी था। भगतसिंह द्वारा असेम्बली में बम-काण्ड इसी सोच की एक तार्किक परिणति थी, लेकिन भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की फाँसी के विरोध में महात्मा गाँधी ने जनता की ओर से व्यापक दबाव के बावजूद, कोई औपचारिक अपील तक जारी नहीं की।

अपने क्रांतिकारी जीवन के जो संस्मरण यशपाल ने सिंहावलोकन में लिखे, उनमें अपनी दृष्टि से उन्होंने उस आंदोलन और अपने साथियों का मूल्यांकन किया। तार्किकता, वास्तविकता और विश्वसनीयता पर उन्होंने हमेशा ज़ोर दिया है। यह सम्भव है कि उस मूल्यांकन से बहुतों को असहमति हो या यशपाल पर तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने का आरोप हो। आज भी कुछ लोग ऐसे हैं, जो यशपाल को बहुत अच्छा क्रान्तिकारी नहीं मानते। उनके क्रान्तिकारी जीवन के प्रसंग में उनके चरित्रहनन की दुरभसंधियों को ही वे पूरी तरह सच मानकर चलते हैं और शायद इसीलिए यशपाल की ओर मेरी निरन्तर और बार-बार वापसी को वे 'रेत की मूर्ति' गढ़ने-जैसा कुछ मानते हैं।

'क्रांति' को भी वे बम-पिस्तौलवाली राजनीति क्रान्ति तक ही सीमित करके देखते हैं। राजनीतिक क्रांति यशपाल के लिए सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन का ही एक हिस्सा थी। साम्राज्यवाद को वे एक शोषणकारी व्यवस्था के रूप में देखते थे, जो भगतसिंह के शब्दों में, 'मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के हाथों राष्ट्र के शोषण का चरम रूप है'(भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज (सं.) जगमोहन और चमनलाल, संस्करण '19, पृ.321) इस व्यवस्था के आधार स्तम्भ-जागीरदारी और ज़मींदारी व्यवस्था भी उसी तरह उनके विरोध के मुख्य एजेंडे के अंतर्गत आते थे। देश में जिस रूप में स्वाधीनता आई और बहुतों की तरह, वे भी संतुष्ट नहीं थे। स्वाधीनता से अधिक वे इसे सत्ता का हस्तान्तरण मानते थे। और यह लगभग वैसा ही था जिसे कभी प्रेमचंद ने जॉन की जगह गोविंद को गद्दी पर बैठ जाने के रूप में अपनी आशंका व्यक्त की थी।

क्रांतिकारी राष्ट्र भक्ति और बलिदान की भावना से प्रेरित-संचालित युवक थे। अवसर आने पर उन्होंने हमेशा बलिदान से इसे प्रमाणित भी किया। लेकिन यशपाल अपने साथियों को ईर्ष्या-द्वेष, स्पर्धा-आकांक्षावाले साधारण मनुष्यों के रूप में देखे जाने पर बल देते हैं। अपने संस्मरणों में आज राजेन्द्र यादव जिसे आदर्श घोषित करते हैं|'वे देवता नहीं हैं' उसकी शुरुआत हिन्दी में वस्तुतः यशपाल के इन्हीं संस्मरणों से होती है। ये क्रांतिकारी सामान्य मनुष्यों से कुछ अलग, विशिष्ट और अपने लक्ष्यों के लिए एकांतिक रूप से समर्पित होने पर भी सामान्य मानवीय अनुभूतियों से अछूते नहीं थे। हो भी सकते थे। शरतचंद्र ने पथेरदावी में क्रांतिकारियों का जो आदर्श रूप प्रस्तुत किया, यशपाल उसे आवास्तविक मानते थे, जिससे राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा मिलती

हो, उसे क्रांतिकारी आन्दोलन और उस जीवन को वास्तविकता का एक प्रतिनिधि और प्रामाणिक चित्र नहीं माना जा सकता। सुबोधचंद्र सेन गुप्त पथेरदावी में बिजली पानीवाली झंझावाती रात में सव्यसाची के निषक्रमण को भावी महानायक सुभाषचंद्र बोस के पलायन के एक रूपक के तौर पर देखते हैं, जबकि यशपाल सव्यसाची के अतिमानवीय से लगने वाले कार्य-कलापों और खोह-खण्डहरों में बिताए जानेवाले जीवन को वास्तविक और प्रामाणिक नहीं मानते। क्रान्तिकारी जीवन के अपने लम्बे अनुभवों को ही वे अपनी इस आलोचना के मुख्य आधार के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

2, मार्च सन् 38 को जेल से रिहाई के बाद, जब उसी वर्ष नवम्बर में यशपाल ने विप्लव का प्रकाशन-संपादन शुरू किया तो अपने इस काम को उन्होंने 'बुलेट बुलेटिन' के रूप में परिभाषित किया। जिस अहिंसक और समतामूलक समाज का निर्माण वे राजनीतिक क्रांतिकारी के माध्यम से करना चाहते थे, उसी अधूरे काम को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने लेखन को अपना आधार बनाया। अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं के केन्द्र में रखकर लिखे गए साहित्य को प्रायः हमेशा ही विचारवादी कहकर लांछित किया जाता है। नंद दुलारे वाजपेयी का प्रेमचन्द्र के विरुद्ध बड़ा आरोप यही था। अपने ऊपर लगाए गए प्रचार के आरोप का यशपाल ने उत्तर भी लगभग प्रेमचन्द्र की ही तरह दिया।

अपने पहले उपन्यास दादा कॉमरेड की भूमिका में उन्होंने लिखा, 'कला के प्रेमियों को एक शिकायत मेरे प्रति है कि (मैं) कला को गौण और प्रचार को प्रमुख स्थान देता हूँ। मेरे प्रति दिए गए इस फ़ैसले के विरुद्ध मुझे अपील नहीं करनी। संतोष है अपना अभिप्राय स्पष्ट कर पाता हूं।(दादा कॉमरेड, संस्करण' 59, पृ.4) अपने लेखकीय सरोकारों पर और विस्तार से टिप्पणी करते हुए बाद में उन्होंने लिखा, 'मनुष्य के पूर्ण विकास और मुक्ति के लिए संघर्ष करना ही लेखक की सार्थकता है। जब लेखक अपनी कला के माध्यम से मनुष्य की मुक्ति के लिए पुरानी व्यवस्था और विचारों में अन्तर्विरोध दिखाता है और नए आदर्श सामने रखता है तो उस पर आदर्शहीन और भौतिकवादी होने का लांछन लगाया जाता है। आज के लेखक की जड़ें वास्तविकता में हैं, इसलिए वह भौतिकवादी तो है ही परन्तु वह आदर्शहीन भी नहीं है। उसके आदर्श अधिक यथार्थ हैं। आज का लेखक जब अपनी कला द्वारा नए आदर्शों का समर्थन करता है तो उस पर प्रचारक होने का लांछन लगाया

जाता है। लेखक सदा ही अपनी कला से किसी विचार या आदर्श के प्रति सहानुभूति या विरोध पैदा करता है। साहित्य विचारपूर्ण होगा।

साहित्य और यशपाल जी यशपाल के लेखन की प्रमुख विधा उपन्यास है, लेकिन अपने लेखन की शुरूआत उन्होने कहानियों से ही की। उनकी कहानियाँ अपने समय की राजनीति से उस रूप में आक्रांत नहीं हैं, जैसे उनके उपन्यास। नई कहानी के दौर में स्त्री के देह और मन के कृत्रिम विभाजन के विरुद्ध एक सम्पूर्ण स्त्री की जिस छवि पर जोर दिया गया, उसकी वास्तविक शुरूआत यशपाल से ही होती है। आज की कहानी के सोच की जो दिशा है, उसमें यशपाल की कितनी ही कहानियाँ बतौर खाद इस्तेमाल हुई है। वर्तमान और आगत कथा-परिदृश्य की संभावनाओं की दृष्टि से उनकी सार्थकता असंदिग्ध है। उनके कहानी-संग्रहों में पिंजरे की उड़ान, ज्ञानदान, भस्मावृत्त चिनगारी, फूलों का कुर्ता, धर्मयुद्ध, तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ और उत्तमी की माँ प्रमुख हैं।

जो और जैसी दुनिया बनाने के लिए यशपाल सक्रिय राजनीति से साहित्य की ओर आए थे, उसका नक्शा उनके आगे शुरू से बहुत कुछ स्पष्ट था। उन्होंने किसी युटोपिया की जगह व्यवस्था की वास्तविक उपलब्धियों को ही अपना आधार बनाया था। यशपाल की वैचारिक यात्रा में यह सूत्र शुरू से अन्त तक सक्रिय दिखाई देता है कि जनता का व्यापक सहयोग और सक्रिय भागीदारी ही किसी राष्ट्र के निर्माण और विकास के मुख्य कारक हैं। यशपाल हर जगह जनता के व्यापक हितों के समर्थक और संरक्षक लेखक हैं। अपनी पत्रकारिता और लेखन-कर्म को जब यशपाल 'बुलेट की जगह बुलेटिन' के रूप में परिभाषित करते हैं तो एक तरह से वे अपने रचनात्मक सरोकारों पर ही टिप्पणी कर रहे होते हैं। ऐसे दुर्धर्ष लेखक के प्रतिनिधि रचनाकर्म का यह संचयन उसे सम्पूर्णता में जानने-समझने के लिए प्रेरित करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। वर्षों 'विप्लव' पत्र का सम्पादन-संचालन। समाज के शोषित, उत्पीड़ित तथा सामाजिक बदलाव के लिए संघर्षरत व्यक्तियों के प्रति रचनाओं में गहरी आत्मीयता। धार्मिक ढोंग और समाज की झूठी नैतिकताओं पर करारी चोट। अनेक रचनाओं के देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद। 'मेरी तेरी उसकी बात' नामक उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार।

4.2.2 व्यक्तित्व

जिन्दगी के सही अर्थों में जीना एक बात है और उस पर बराबर बातें करते रहना दूसरी बात है। प्रतिभा के धनी यशपाल ने जीवन को जिस रूप में देखा, जाना और पहचाना है उससे उनके व्यक्तित्व की रेखाएं बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती हैं। आप एक ऐसे व्यक्तित्व के धनी सर्जनात्मक कथाकार हैं जिनके लिए जीवन जीने के कर्म की परिभाषा है। उनका समय लेखन-उनके जीवन को स्पष्ट करता है। प्रतिभा और आस्था से मिलकर उनका व्यक्तित्व ओजस्वी बन पड़ा है। जीवन के अनगिनत अनुभवों को स्वयं जीते हुए ज्यों का त्यों अक्षर बद्ध कर देना यशपाल जी की नैसर्गिक विशेषता है। जीवन-संग्राम के जीवंत योद्धा, रूढ़ि मुक्त, पूर्वाग्रह मुक्त, प्रगतिशील विचारक, सफल अनुवादक, सभी सम्पादक और असंख्य लेखों, कहानियों एवं उपन्यासों के रचयिता आदि सब को मिलाकर जो व्यक्तित्व बनाया जाता है उनका नाम है- यशपाल।

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न पहलुओं और पृष्ठ-भूमियों के बारीक रेशों से बुना जाता है। व्यक्तित्व की विभिन्न इकाइयों पैतृक, पारिवारिक, नैतिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक तथा देश-कालानुसार युगीन पहलुओं से समग्रता प्राप्त करती है। साहित्यिक रचनाएं रचनाकार के आन्तरिक व्यक्तित्व से सीधा सम्बन्ध रखती हैं। इसलिए रचनाओं के मूल में निहित रचनाकार के व्यक्तित्व की खोज उनकी रचनाओं के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण बन जाती है। इस बात को स्पष्ट करते हुए गजानन्द माधव मुक्ति ने लिखा है- *" कवि कथ्य के माध्यम से अनजाने अपना चरित्र प्रस्तुत करता है।"* अतः यह स्पष्ट है कि रचनाकार के जीवन एवं व्यक्तित्व की उपेक्षा करके उनकी रचनाओं का समग्र अनुसंधान या अध्ययन असम्भव है। इस दृष्टि से यशपाल के साहित्य का अध्ययन करने के लिए उनके व्यक्तित्व का परिचय होना आवश्यक है। यशपाल की व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि उनके दो पहलू स्पष्टता दृष्टिगोचर होते हैं- क्रान्तिकारी और साहित्यकार का। यह द्विमुखी व्यक्तित्व उन्हें अपने पूर्वजों से नहीं मिलता था। सामाजिक परिवेश ने उनको क्रान्तिकारी बनाया था।

यशपाल आजीवन क्रांतिकारी रहे| साहित्य, राजनीति, पत्रकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने अपने क्रांतिकारी व्यक्तित्व की छाप छोड़ी है| उन्होंने हाथ में पिस्तौल लेकर ब्रिटिश सत्ता के सामने विप्लव की आग

भड़कायी और क्रांतिकारी संज्ञा के पात्र बने| साहित्य के क्षेत्र में अपने प्रगतिशील विचारों को प्रस्तुत करके उन्होंने नई दिशा निर्धारित की| वे मूलतः स्वतंत्र चिंतक थे| उन्हें तत्कालीन भारतीय राजनीतिक तथा सामाजिक परतंत्रता सह नहीं थी| उन्होंने देखा कि भारतीय समाज और ब्रिटिश शासकों के शोषण का शिकार बना हुआ है। तो दूसरी ओर वह पाखण्ड, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, दुराचार आदि से जर्जर हो रहा है। विदेश सत्ता से अपने देश को मुक्त करने के लिए यशपाल ने क्रांति का अवलम्बन किया| उन्होंने साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा को अपनाकर समाज के नवनिर्माण का दायित्व स्वय ले लिया।

यशपाल: व्यक्तित्व और कृतित्व विश्व की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील युग के साथ परिस्थितियां भी होती जाती हैं। आज का भारत स्वतंत्रता के पूर्व के भारत से भिन्न था क्योंकि उस समय की राजनीतिक परिस्थितियां आज से भिन्न थीं| अंग्रेजों की दमन नीति तथा अत्याचार से संपूर्ण देश त्रस्त था।

4.2.2.1 अभिनेता

साहित्यकार के रूप मेंयशपाल जी विशेष ख्याति प्राप्त कर चुके हैं परन्तु आपका एक और रूप है-अभिनेता का|यशपाल को कुशल अभिनेता तथा निर्देशक के रूप में कुछ ही व्यक्ति जानते होंगे|अपने-अपने अभिनय एवं निर्देशन का परिचय अपने ही नाटक ‘नशे-नशे की बात’ के अभिनय के अवसर पर दिया था|

4.2.2.2 चित्रकार

यशपाल अपनी युवावस्था में चित्रकारी के विशेष प्रेमी रहे हैं| आपके वक्तव्य से स्पष्ट है, “पहले मुझे चित्रकारी का बड़ा ही शौक था अब नहीं है| जेल में इसके लिए झगड़ा करके विशेष आज्ञा ले ली थी| आज्ञा इस शर्त पर मिली थी कि चित्र बनाकर बाहर नहीं भेज सकता था| उन्हें सायद आशंका थी कि जेल का नक्शा बाहर बनाकर भेज दूँ और भागने की व्यवस्था कर लूँ | चित्र में केवल भावात्मक कल्पना से बनाता था| कभी प्राकृतिक दृश्य का अंकन नहीं किया| मेरे बनाए दो चित्र कृष्णदास जी को बहुत पसन्द आ जाने के कारण ‘भारत काला भवन’ काशी में ले जाए गए हैं|” यशपाल की पुस्तकों में मुख्यपृष्ठ पर बनाए गए चित्र आपके ही हाथों की देन है|

4.3 रचनाएँ

किसी भी साहित्यकार के कृतित्व का आधार उनकी कृतियाँ होती हैं| साहित्यकार कृतियों द्वारा ही हमारे सामने आते हैं| साहित्य के माध्यम से वह अपने अनुभवों,स्वप्नों तथा आदर्शों को मूर्त करता है, वह मन से कल्पना जगत तथा यथार्थ जगत की अभिव्यक्ति करता है| साहित्यकार कल्पना की मनोज्ञता, भावों की सुकमारता, अनुभूति की सघनता, विचारों की गम्भीरता और अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता द्वारा कृतियों को अमरत्व प्राप्त करता है|

यशपाल का साहित्यिक व्यक्तित्व वेदना और कष्ट की अग्नि में तपकर निखरा है| इस बात को ध्यान में रखते हुए डॉ॰ पाटील पदमा का कथन है- "यशपाल ने अपने लेखन द्वारा सामाजिक असंगतियों, विषमताओं, विकृतियों को बेनकाब किया है| उनकी रचनाएँ गम्भीर सोच, तथा कुछ समस्याओं के संकेत दे देती है| मार्कस्वाद विचार प्रणाली से अभिभूति उनके प्रगतिशील व्यक्तित्व की वजह से वे भारतीय समाज के सभी वर्गों की समस्याओं तथा समस्याओं तथा विषमताओं को नजदीक से देख तथा समझ सके हैं| उन्होंने अपनी समसायिक सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों का गम्भीरता से अवलोकन किया और अपनी रचनाओं का आधार बनाया है| उन्होंने क्रान्तिकारी जीवन के साहस और निर्भीकता की नीव पर साहित्यिक भवन का निर्माण किया है| अत: इनका साहित्य और क्रांतिकारी व्यक्तित्व परस्पर सम्बद्ध है| प्रो॰ वसुदेव का यह कथन इस सम्बन्ध में उचित ही है| "यशपाल जी उन साहित्यकारों में से हैं जो कलम और तलवार चलाने में समान सफलता प्राप्त कर चुके हैं| क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होने पर भी उनकी कलम कभी नहीं रुकी| एक ओर पिस्तौल चलाना और दूसरी ओर कलम की गति, दोनों साथ-साथ चलते रहे|" उन्होंने हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है| जैसे- कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आत्मकथा, यात्रा साहित्य आदि|

4.3.1 कथा साहित्य

कथा साहित्य के अन्तर्गतदो विधाएँ आती हैं- (1) उपन्यास (2) कहानी

4.3.1.1 उपन्यास

यशपाल जी ने सामाजिक,राजनीतिक तथा एतिहासिक उपन्यास लिखें हैं| साहित्य के क्षेत्र में यशपाल राजनीतिक क्षेत्र से आये थे, अत: उनके उपन्यासों का राजनीति की ओर झुकाव होना स्वाभाविक था| विकासक्रम के अनुसार उनके उपन्यास निम्नानुसार हैं..........

उपन्यास	प्रकाशन वर्ष
1. दादा कामरेड	सन 1941 ई०
2. देशद्रोही	सन 1943 ई०
3. दिव्या	सन 1945 ई०
4. गीता पार्टी कामरेड	सन 1946 ई०
5.मनुष्य के रूप सन	सन 1949 ई०
6. अमिता	सन 1956 ई०
7. झूठा-सच भाग 1	सन 1958 ई०
8. झूठा-सच भाग 2	सन 1960 ई०
9. बारह घण्टे	सन 1963ई०
10. अप्सरा का शाप	सन 1965 ई०

4.3.1.2 कहानी

यशपाल की लेखन-प्रक्रिया कहानी से आरम्भ हुई। जब वे पांचवी कक्षा में थे तब 'अंगूठी' नामक कहानी लिखी थी जो उनकी सर्वप्रथम कहानी थी। सन 1940 से सन 1976 तक 16 कहानी संग्रह उन्होंने हिन्दी साहित्य को प्रदान किए और 17 वी कहानी संग्रह उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई उन्होंने प्रेमचन्द्र की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए भी अपने ढंग से कहानियां लिखी हैं। सामाजिक जीवन यथार्थ को कहानी का विषय बनाया है सामाजिक कुप्रथा, रूढ़ियाँ, अन्याय, अनीति, अत्याचार एवं अराजकता के सामने विद्रोहात्मक दृष्टि बिंदु को प्रकट किया है। उन्होंने विभिन्न समस्याओं को लेकर कहानियां लिखी हैं। जैसे

आर्थिक समस्या, शोषण की समस्या, सामाजिक समस्या, राजनीतिक समस्या, वर्ग भेद की समस्या, धार्मिक समस्या, वेश्या जीवन के समस्या, सैक्स की समस्या, विवाह के समस्या, वर्णभेद की समस्या, शिक्षा की समस्या आदि समस्याओं के आधार पर कथा का प्लोट तैयार किया है। यशपाल की कहानी का संग्रह निम्नानुसार.......

कहानी संग्रह	**प्रकाशन वर्ष**
1 पिंजरे की उड़ान	सन 1938 ई०
2 वो दुनिया	सन 1941 ई०
3 तर्क का तूफान	सन 1943 ई०
4 ज्ञानदान	सन 1943 ई०
5 अभिशाप	सन 1944 ई०
6 भस्मावृत चिंगारी	सन 1946 ई०
7 फूलों का कुर्ता	सन 1949 ई०
8 धर्मयुद्ध	सन 1950 ई०
9 उत्तराधिकारी	सन 1951 ई०
10 चित्र का शीर्षक	सन 1952 ई०
11 तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ	सन 1954 ई०
12 उत्तमी की माँ	सन 1955 ई०
13 ओ भैरवी	सन 1958 ई०
14 सच बोलने की भूत	सन 1962 ई०
15 खच्चर और आदमी	सन 1965 ई०
16 भूख के तीन दिन	सन 1968 ई०
17 लैम्प शेड़	सन 1979 ई०

4.3.2 कथेतर साहित्य

यशपाल के कथेतर साहित्य के अन्तर्गत प्रमुख्यता: निबन्ध,आत्मकथा,यात्रा-साहित्य, नाटक, पत्रकारिता, पत्र-साहित्य आदि विधाएँ आती हैं|

4.3.2.1 निबन्ध

यशपाल का स्पष्ट व्यक्तित्व उनके निबन्ध साहित्य में झलकता है। उन्होंने उपन्यास और कहानी की भाँति निबन्ध क्षेत्र में भी लम्बी सफर की है। उनके निबन्धों में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है। राजनीतिक निबन्धों में राजकीय परिस्थिती और विशेषकर गाँधीवादी विचारधारा का तर्कपूर्ण खण्डन किया है। उन्होंने विचारात्मक, राजनीतिक, सामाजिक, व्यक्ति-व्यंजक आदि प्रकार के निबन्ध लिखे हैं। यशपाल जी ने कुल 10 निबन्ध संग्रह लिखिए जो क्रमश: निम्नानुसार हैं.......

निबन्ध संग्रह

1 न्याय का संघर्ष

2 मार्क्सवाद

3 गाँधी की शव परीक्षा

4 चतुर क्लब

5 बात बात में बात

6 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी

7 रामराज्य की कथा

8 देखा सोचा समझा

9 बीवी जी कहती है मेरा चेहरा रोबीला है

10 जग का मुजरा

4.3.2.2 आत्मकथा

साहित्यकार की आत्मकथा साहित्य जगत के लिए अमूल्य निधि होती है। यशपाल की आत्मकथा द्वारा उनका पूरा अधिकृत परिचय मिलता है। बाल्यावस्था से उनमें क्या क्या विशेषताएं थी, किस प्रकार क्रान्तिकारी बने, कौन-कौन मित्र थे, उनसे किस प्रकार सहयोग मिलता रहा, वे किस प्रकार सहयोग देते रहे, बम प्रकरण में कहाँ तक सफलता मिली, कब सफल हुए। उनका दाम्पत्य जीवन, परिवारिक जीवन, जेल जीवन आदि की झांकी होती है। इस तरह कई रोमहर्षक प्रसंगों से भरी हुई एवं प्रासंगिकता से लिखी यशपाल की आत्मकथा तीन भागों में विभाजित है, जो निम्नानुसार हैं.....

1. सिंहावलोकन प्रथम भाग
2. सिंहावलोकन द्वितीय भाग
3. सिंहावलोकन तृतीय भाग

4.3.2.3 यात्रा-साहित्य

यशपाल की यात्रा-वर्णन से सम्बन्धित तीन संग्रह निम्नानुसार है......

यात्रा वर्णन

1. लोहे की दीवार के दोनों ओर
2. राहबीती
3. स्वर्गोधान बिना साँप

4.3.2.4 नाटक

1. नशे-नशे की बात (1953)
2. रूप की परख (1952)
3. गुदबाई दर्दे दिल (1952)

4.3.2.5 अनूदित साहित्य

यशपाल ने साहित्य की विविध विधाओं का अनुवाद किया है| इतना ही नहीं यशपाल द्वारा लिखित अनेक कृतियों का आँय भाषा में अनुवाद हुआ है| यहाँ पर यशपाल साहित्य की कृतियों के अनूदित रचनाओं को देखेंगे| यशपाल की कहानियों के अनुवाद विश्व की सभी भाषाओं में हुए हैं| सोवियत रूस तथा यूरोप में अनेक उपन्यासों के अनुवाद और संकलन भी प्रकाशित हुए हैं| यशपाल का 'अमिता' उपन्यास यूनेस्को द्वारा अन्तराष्ट्रीय भाषाओं में अनुवाद के लिए चुना गया है| अंग्रेजी में प्रकाशित अनूदित पुस्तकें निम्नलिखित हैं-

1. Asphalt: Author and partial by coronial frinds,university of pennesylvania press (1969)
2. The Essence of love (Collection of stories): Arnold reinmann (1975)
3. Amita (Movel): Arnild reimann, new Delhi (1977)
4. Sinhavalokan (Memories) and another nivel is published by vikas prakashan house (new delhi)

4.3.2.6 पत्रकारिता

यशपाल ने पत्रकारिता का कार्य की सफलता से किया। उन्होंने आर्थिक समस्या के समय में यह कार्य आरम्भ किया था। यशपाल जी ने 'विप्लय' नामक पत्रिका का प्रकाशन अपनी माता से 300 रुपये के बल पर किया था। विप्लव पत्रिका के अधिकांश लेख यशपाल विभिन्न नामों से बिना किसी सहायक के स्वयं ही लिखा करते थे। 'विप्लव' का उद्देश समाज में परिवर्तन लाना तो था परन्तु शस्त्रों की शक्ति द्वारा नहीं, अपितु आवश्यक परिवर्तनों के लिए विचारधारा और मनोवृति उत्पन्न करता था। फलस्वरूप विप्लव में प्रकाशित लेखों के प्रभाव से सन 1939 के अन्त में पत्रिका इतनी जनप्रिय हो गई कि उसका एक उर्दू संस्करण 'बागी' नाम से भी निकलने लगा। अंग्रेज सरकार यशपाल के लेखों से सन्तुष्ट ना हो सकी और 1940 में उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया। सरकार द्वारा उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया और मुकदमे में उनसे 12000 रुपये की जमानत मांगी गई अथवा पत्रिकाओं को बन्द करने का आदेश मिला यशपाल रुपये जुटाने में असमर्थ थे|अत:

उन्होंने दोनों पत्रिकाओं को बन्द करने का आदेश स्वीकार कर लिया| मुक्ति के पश्चात् सन् 1941 में उन्होंने दोनों पत्रिकाओं का नाम बदल दिया और उन्हेंने 'विप्लव ट्रेक्ट' के नये नाम से प्रकाशित करने लगे, परन्तु यह प्रयास अधिक दिन तक नहीं चल सका और यशपाल को पत्रिका का प्रकाशन बन्द करना पड़ा| उन्होंने यह समझ लिया था कि उनके विचार, सार्वजनिक कार्य और प्रयत्न राष्ट्र के विरुद्ध हैं लेकिन फिर भी अदम प्रकृति के पुरुष होने के कारण यशपाल ने साहित्य-सूजन छोड़कर जीविका के लिए अन्य मार्ग नहीं अपनाया|

4.4 उपाधियाँ तथा सम्मान

- देव पुरस्कार (1955)
- पंजाब सरकार द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट (1956)
- साहित्य-वारिधि (1967)
- नेहरू पुरस्कार (1969)
- पद्मभूषण (1970)
- मंगलाप्रसाद परितोषिक (1971)
- डी॰ लिट॰ आगरा विश्वविद्यालय (1974)
- साहित्य वाचस्पति (1975)
- साहित्य अकादमिक पुरस्कार 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास (1974)

यशपाल का साहेब फलक अधिक व्यापक है| वे तीव्र राष्ट्रीय चेतना के लेखक हैं, वर्गभेद के प्रश्न उनके लेखन में अक्सर उभर कर आते हैं| वे स्पष्टत: यथास्थिति के खिलाफ खड़े हुए लेखक हैं| यशपाल ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए इतिहास का सहारा भी लिया है| राम निहाल गुंजन के शब्दों में कहें तो, "यशपाल राहुल के बाद दूसरे महत्वपूर्ण लेखक हैं जो इतिहास और साहित्य को आजीवन विचारधारा तक संघर्ष के साथ जोड़कर रचते हैं|" यशपाल का साहित्य हिन्दी साहित्य के इतिहास का ही नहीं, उससे भी अधिक स्वयं इतिहास का एक अनिवार्य हिस्सा है| इस अर्थ में भी महत्वपूर्ण होता है कि वह हमें वर्तमान को

समझाने और उसके स्वागत का सपना देता है| प्रफुल्ल कोलख्यान इस सम्बन्ध में लिखते हैं, "मानने में संकोच नहीं होना चाहिए कि यशपाल का सम्पूर्ण साहित्य एक व्यापक अर्थ में नए सन्दर्भों के अनुकूल वास्तविक नैतिकता के नये आयामों की तलाश है| इसी तलाश में वे इतिहास को भी न सिर्फ खगालते हैं, बल्कि जरूरत पड़ने पर अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति में विचार के विनियोग से उसे नया रचाव भी प्रदान करते हैं|"

4.5 यशपाल की विविध मानताएँ

प्रत्येक साहित्यकार की अपनी कुछ मान्यताएँ होती हैं, जिससे वह कभी परम्परा से, कभी परिस्थिति से तो कभी आत्मबुद्धि से अपनी कलाकृतियों के माध्यम से व्यक्त करता है| इससे यशपाल भी अछूते नहीं हैं| यशपाल पाठक का मनोरंजन भर करने वाले लेखक नहीं थे, वरन उनकी कृतियों में विचार थे| कमलेश्वर ने लखनऊ में यशपाल से उनके घर में हुई पहली भेंट के सन्दर्भ में लिखा है, हम ऐसे घरों में रहने की आदि थे, जहाँ रहकर हमें विचार मिलते थे, पर यशपाल विचारों के घर में रहते थे जहाँ वे उन्हें यथार्थ का जामा पहनाते थे| आलोच्य अध्ययन में हम यशपाल की मान्यताओं को लेकर अध्ययन करेंगे| जहाँ तक यशपाल का प्रश्न है उनकी जीवन दृष्टि के निर्माण में मार्क्सवादी दर्शन भी विशेष प्रेरणा तथा सक्रियता है| मार्क्सवादी विचारधारा के आलोक में ही उन्होंने जीवन और जगत् को देखने तथा विश्लेषित करने का प्रयास किया है| उनकी सम्पूर्ण विचारधारा, चाहे उसका सम्बन्ध राजनीति, समाज, अर्थशास्त्र, धर्म, साहित्य या संस्कृति जीवन के किसी भी पहलू में क्यों ना हो, मार्क्सवादी विचारधारा के प्रकाश में ही आगे बढ़ी है यशपाल साहित्य का समग्र अध्ययन करने के पश्चात हम कह सकते हैं कि यशपाल की मान्यताएँ अर्थात जीवन दर्शन पक्ष कथात्मक के साथ-साथ कथेतर साहित्य में विशेष कर निबन्ध एवं उपन्यास साहित्य में भी दिखाई देता है| यशपाल की मान्यताओं को निम्नोक्त रूप में विभाजित कर सकते हैं- यथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक-नीतिगत, साहित्यिक एवं कलागत आदि।

4.5.1 राजनीतिक मान्यताएँ

यशपाल की दृष्टि में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना से ही न्याय पूर्ण एवं शोषण विहीन समाज बन सकता है| और इस व्यवस्था के स्थापित करने का दायित्व इतिहास ने शोषित पीड़ित किसानों और श्रमिकों को सौंपा है| और इन्हीं शक्तियों से वह प्रतिबद्ध भी रहे| यशपाल के सृजन संसार में यह स्पष्ट है कि राजनीति साहित्य और समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हैं| जिन्हें तोड़ने और साहित्य से खारिज करने के लिए साहित्यवादियों द्वारा लगातार आक्रमण होते रहे हैं| लेकिन यशपाल ने अपनी राजनीतिक विचारों की प्रतिबद्धता को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है, साहित्यवाद भी तो एक विचारधारा है तब किसी राजनीतिक विचारधारा या दर्शन में आस्था रखना कोई गलत या बेजा बात नहीं है| राजनीति भी राजनीतिक और सांस्कृतिक विचारों की भाँति है| हर जागरुक व्यक्ति के कुछ न कुछ राजनीतिक विचार होते हैं जो अपने आप को राजनीति से परे मानता है वह तो झूठ बोलता है अथवा नासमझ है| दरअसल यशपाल उन समर्थ लेखकों में से हैं जिनके सृजन संसार को आलोचकों की आवश्यकता नहीं है| उनके पास उनका विशाल पाठक वर्ग है जिसके हर तरह के प्रश्नों के उत्तर के रूप में उनके समक्ष यशपाल के विचार आ खड़े होते हैं और निराश-हताश क्षणों में उनका संवल बन जाते हैं| हाँ आलोचकों और आलोचना को यशपाल की ज्यादा जरूरत है| यदि आलोचना को सृजन संसार से जुड़ना है तो उसे यशपाल की वैचारिकता, प्रतिबद्धता और सजगता को समझना और विश्लेषित करना होगा| यशपाल का कहना था कि, राजनीति से सम्पर्क छोड़ देने का मतलब है, अपने देश और समाज की अवस्था और भविष्य से कोई नाता न रखना| “समकालीन राजनीति उनकी आरम्भिक रचनाओं पर कुछ इस तरह हावी है कि वे पाठक को लिख-लिखकर दूसरों को कम्युनिस्ट बनाने का जरिया यानी मार्क्सवाद के प्रचार का माध्यम प्रतीत होने लगा है|”

4.5.1.1 यशपाल और राजनीति

यशपाल और राजनीति का सम्बन्ध उनके बचपन से ही रहा है| यशपाल बचपन में लगभग 7 वर्ष गुरुकुल में रहे| गुरुकुल में भारतीय संस्कृति के साथ-साथ राजनीतिक चेतना का भी प्रचार- प्रसार आर्य समाज के प्रगतिशील विचारधारा के माध्यम से होता था| जिसका सम्यक प्रभाव यशपाल की राजनीतिक चेतना पर

पड़ा| बाद में क्रान्तिकारियों के सम्पर्क एवं मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव उन पर पड़ा इसके सम्बन्ध में लिखते हैं – 'एक समय ऐसा था कि कोई भी व्यक्ति आर्य समाजी वन जाने से ही सरकार की दृष्टि में राजनीतिक रूप से संदिग्ध हो जाता था| उस समय किसी नवयुवक के आर्य समाजी वन जाने पर परिवार के लोग ऐसे ही चेहरा लटका लेते थे| जैसे कि आजकल (1950-51) में घर के लड़के कम्युनिस्ट बन जाने पर आसंका अनुभव की जाती है| यशपाल की प्रारम्भिक राजनीतिक चेतना आतंकवादी दर्शन से प्रभावित थी| तदनतर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव रहा| उनका दादा कामरेड उपन्यास आतंकवाद से मार्क्सवाद तक कि उनकी इस राजनीतिक यात्रा का प्रमाण प्रस्तुत करता है| बाद का यशपाल का सारा जीवन मार्क्सवादी अवधारणाओं को ही पद-पद पर व्याख्यायित करता है| यशपाल अपनी मार्क्सवादी राजनीतिक मान्यताओं के कारण ही गाँधीवाद, गाँधीवाद रामराज्य से लेकर पूंजीवादी जनतंत्र का विरोध करते दिखाई देते हैं| यशपाल ने अपनी राजनीतिक मान्यताओं को सर्वप्रथम मार्क्सवाद (1941) एवं न्याय का संघर्ष (1940) इन निबन्ध ग्रंथों के माध्यम से स्थापित किया आगे चलकर अपनी गाँधीवाद की शव परीक्षा (1942) रामराज्य की कथा' (1950) बात-बात में बात (1950) 'देखा सोचा समझा' (1951) आदि सशक्त कृतियों द्वारा राजनीतिक चेतना का परिचय दिया| यशपाल के अनुसार मार्क्सवाद का दर्शन विश्वास के आधार पर चलने वाला अध्यातमिक दर्शन के ठीक विपरीत है| वह मनुष्य के प्रकृति पर विजय प्राप्त कर अपने समाज का कार्यक्रम और मार्ग मनुष्य द्वारा निश्चय कर सकने में विश्वास रखता है| वह संसार की रचना और विकास का आधार प्रकृति में मानता है| प्रकृति के अलावा किसी आत्मा या आध्यात्मिक शक्ति में वह विश्वास नहीं रखता, न उनकी जरूरत ही देखता है| मार्क्सवाद की नजर में आत्मा-परमात्मा, भूत-प्रेत आदि काल्पनिक वस्तुओं की तरह केवल विश्वास की ही वस्तु है| यशपाल मानते हैं कि समाज के इतिहास का आधार आर्थिक है, साथ ही वे यह भी मानते हैं कि इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य जो कुछ करता है वह धन या द्रव्य की प्राप्ति के उद्देश से ही करता है| धन और द्रव का महत्त्व मनुष्य की दृष्टि में इसलिए है कि सामाजिक परिस्थितियों के कारण धन जीवन निर्वाह के साधनों का प्रतीक और प्रतिनिधि है| मार्क्सवाद जब कहता है कि इतिहास का आधार आर्थिक है तो तात्पर्य होता है कि इतिहास का आधार जीवन के उपायों के लिए संघर्ष है| इसलिए मनुष्य या समाज अपने जीवन में जो कुछ भी करता है वह सब अर्थ के अन्तर्गत जीवन की रक्षा और विकास के लिए

होता है| इन्हीं आर्थिक परिस्थितियों और श्रेणियों के आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर समाज में शासन के रूप बदलते रहते हैं| मार्क्सवाद की दृष्टि में शासन शोषण का मुख्य साधन है, सरकार और शासन सदा वलवान श्रेणी के हाथ का हथयार बनकर शोषण के साधन काम करते रहे हैं| इसलिए वे मानते हैं कि पैदावार के साधनों पर मजदूर श्रेणी का अधिकार कायम करने के लिए उनके हाथ में शासन शक्ति होना ऐतिहासिक रूप से जरूरी है| वे यहाँ तक कहते हैं कि सामाजिक व्यवस्था में क्रांति के बाद मजदूरों का निर्बाध शासन ठीक ढंग से कायम करने के लिए परिवर्तन काल में कुछ समय तक मजदूरों का निर्बाध शासन मजदूर तानाशाही कायम करना जरूरी है| बैसे मजदूरों का निर्बाध शासन मार्कसवाद का चरम लक्ष्य नहीं है| यह ऐसी शासन व्यवस्था कायम करने का साधन है जिसमें शोषक तथा शोषित श्रेणियों का अस्तित्व समाप्त हो जाए|

4.5.1.2 यशपाल और गाँधीवाद

यशपाल अपने प्रारम्भिक जीवन में कांग्रेस एवं गाँधीवादी आंदोलनों में भाग लेते रहे| परन्तु जैसे-जैसे कांग्रेश कार्यक्रम की विफलता एवं महात्मा गाँधी की हर जगह अस्पष्टता और अनिश्चित्यातमक स्थिति का उन्हें एहसास होने लगा, वे गाँधीवाद से दूर जा क्रांतिकारी कार्यों में सम्मिलित होने लगे| क्रांतिकारी कार्य के चलते यशपाल चौथे दशक में दल के टूटने एवं पकड़े जाने के कारण साथियों के अभाव में अकेले रह गए| फिर उन्होंने अपना एक नया रास्ता चुना| बन्दुक के बदले कलम हाथ में ले ली और अपनी मान्यताओं के स्थापना एवं गाँधीवाद के दोगलेपन को सिद्ध करने के लिए गाँधीवाद की ‘सव परीक्षा’ (1941) नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी| इस ग्रन्थ के साथ ही अपनी अन्य कृतियों में प्रसंगानूरूप गाँधीवाद की आलोचना की है| इस पुस्तक के प्रयोग के सन्दर्भ में प्रारम्भ में ही वे लिखते हैं कि गाँधीवादी नीति पर चलने का दावा करने वाली शासन व्यवस्था, 13 वर्षों में देश के सर्वसाधारण के जीवन से कठिनाई को दूर करने के लिए क्या कर सकी है, यह देश की जनता अपने अनुभव से जानती है| सर्वोदय को ध्येय मनाने वाले दरिद्र नारायण के पुजारी गाँधीवाद की इस विफलता का कारण समझने के लिए उसके सिद्धांतों की परख आवश्यक है| जनता के लिए यह समझना आवश्यक है कि उनकी बौद्धिक समस्याओं और कठिनाइयों का उपाय गाँधीवाद आध्यात्म द्वारा सम्भव है या आर्थिक और राजनीतिक प्रयत्नों द्वारा?” यशपाल जीवन के अन्तिम क्षण तक गाँधीवाद की

खोखली धारणाएँ एवं उसके प्रतिनिधि कांग्रेसी शासन का विरोध करते रहे| गाँधीजी के समय में ही सैद्धांतिक रूप से लेकर व्यवहारिक पहलुओं तक गाँधीवाद की इतनी प्रौढ़ आलोचना यशपाल साहित्य में पहली बार उपलब्ध होती है।

गाँधी जी एवं गाँधीवाद वास्तविकता एवं यथार्थ से किस प्रकार असंगत था इसका विवेचन विश्लेषण यशपाल जी ने अपने गत कृतियों के माध्यम से बहुत बारीकी से किया है| गाँधीजी के परम शिष्य कहे जाने वाले पंडित नेहरु जी ने भी गाँधी जी के कुछ विचारों का विरोध किया है| एक जगह पर भी लिखते हैं गाँधीजी की कुछ बातें तो हमें सिर्फ उनके महात्मा होने के कारण ही माननी पड़ती थी| गाँधी एवं गाँधीवाद को अपनी विरासत मानकर उनके आदर्शो पर चलने का दम्भ भरने वाले कांग्रेसियों पर परिहार करते हुए यशपाल लिखते हैं- "हमारे देश की शासन की बागडोर जिन लोगों के हाथ में है, वह आज भी गाँधीवाद की दुहाई दे रहे हैं| विडंबना यह है कि देश का शासन वर्ग गाँधीवाद को न तो शासन की नीति के रूप में और न अपने जीवन के आदर्शों के रूप में व्यवहारिक मानता है| यह वर्ग गाँधीवाद का उपदेश देश के साधनहीन सर्व-साधारण के लिए भी उपयोगी समझता है|" सामंतवादी संस्कृति के मोह और मनुष्य समाज के इतिहास के भौतिक आधार की उपेक्षा से गाँधी जी की विचारधारा प्रतिक्रियावादी और हसन मुखी बन गई है, ऐसा यशपाल मानते हैं| अन्त में यशपाल के ही शब्दों में कह सकते हैं- गाँधीवाद सामंती और पूंजीवादी शोषण व्यवस्थाओं के परिणामों को देखकर इस व्यवस्था को बदलने और सर्व साधारण जनता की मुक्ति के मार्ग का निर्देश नहीं करता बल्कि अपनी सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था में, इस व्यवस्था को समाप्त कर देने वाले अन्तरर्विरोध उत्पन्न हो गए देख कर उससे भी पहले की व्यवस्था को आदर्श बताता है और इन शोषक व्यवस्थाओं को चिरंजीव बताने का प्रयत्न करता है| गाँधीवाद जनता की मुक्ति सामंत कालीन घरेलू उद्योग धंधे और स्वामी-सेवक के सम्बन्ध की पुनः स्थापना में समझता है जो इतिहास की कब्र में दफन हो चुकी है| मुर्दा व्यवस्थाएं और आदर्श समाज को विकास की ओर ले जाने का काम नहीं कर सकते| उनका उपयोग उन्हें समाप्त कर देने वाले कारणों को समझने के लिए या उनकी शव परीक्षा करने के लिए ही हो सकता है| "यशपाल को मार्क्सवादी होने पर गर्व है साथ ही गाँधीवादी दर्शन और कांग्रेस की कार्य पद्धतियों के विरोधी हैं| यहां यह सोचना जरूरी है कि यशपाल ने मार्क्सवाद को सत्तावादी नहीं बल्कि जनसत्तावादी माना था| वे मार्क्सवादी

सत्ता के हिमायती थे पर सत्तागत यथार्थ से बहुत ऊपर उठकर वे मनुष्य मात्र की मुक्ति का रास्ता मार्क्सवादी दर्शन में ही तलासते थे, क्योकि सत्ताएँ टूट सकती थीं पर विचार को तोड़ा नहीं जा सकता था।

4.5.1.3 यशपाल और मार्क्सवाद

यशपाल मार्क्सवाद से पूर्णता प्रभावित रहे हैं| उन्होंने एक जीवन-दर्शन के रूप में मार्क्सवाद को स्वीकार किया था| उनका समग्र साहित्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है| यशपाल ने अपने साहित्य में विविध प्रसंगों, सामाजिक समस्याओं तथा राजनीतिक प्रतिबद्धता को स्पष्ट करते हुए मार्क्सवादी तत्वों का प्रतिपादन किया है तो वहीं दूसरी ओर अपनी पत्रकारिता के जरिए जनसामान्य को उनकी भाषा में मार्क्सवाद के पाठ पढ़ाए हैं| यशपाल स्वयं मार्क्सवाद के गहरे अध्ययन में रुचि रखते थे| यशपाल के मार्क्सवाद के गहरे अध्ययन का प्रमाण उनकी रचना मार्क्सवाद है| 'यशपाल द्वनदात्मक भौतिकवाद, अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त, वर्ग-विहीन समाज आदि मार्क्सवादी विचारों से काफी प्रभावित थे| यशपाल ने अपने इस विचारधारा से अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया किया है, मै कम्युनिज्म को सर्व साधारण जनता की मुक्ति का साधन, वैज्ञानिक विचारधारा मानता हूं| अपनी सम्पूर्ण शक्ति को उस वाद के प्रति देय' स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं है| 'इस विचारधारा को मानने के पीछे की भूमिका को स्पष्ट करते हुए यशपाल लिखते हैं, "द्वंदात्मक भौतिकवाद ही मार्क्सवाद के लिए पर्याप्त है चूँकि, क्यों 'वह तो विचार की एक पद्धति है जो समय, स्थान और समय में विशेष स्वीकृत मान्यताओं की सीमाओं से जकड़ी हुई नहीं है| वह हमारे नित्य बढ़ते ज्ञान अनुभवों के आधार पर परिस्थितियों और सामायिक आवश्यकताओं के अनुसार चिंतन की प्रेरणा है|" यशपाल मार्क्सवाद को एक परिवर्तनशील विचारधारा मानते थे| साथ ही भारतीय समाज व्यवस्था के लिए उसे उपयुक्त भी मानते थे| यहां यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि यशपाल मार्क्सवाद का अंधानुकरण नहीं करते इस सम्बन्ध में डॉ सरोज गुप्ता लिखती हैं, "स्पष्ट है कि सिद्धान्त रूप से मार्क्सवाद से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुए भी यशपाल उनको क्रियात्मक अथवा व्यवहारिक रूप में परिणत करने के लिए समय, स्थान, परिस्थिति और विचारधारा का महत्व स्वीकार करते हैं| यशपाल मार्क्सवाद को सामान्य जनता की भक्ति का मार्ग मानते थे, इसलिए इसका प्रचार-प्रसार आवश्यक मानते थे| यही कारण है कि यशपाल ने अपने साहित्य के माध्यम से इसका खूब प्रचार-प्रसार किया

यशपाल जब क्रांतिकारी कार्यों में संलग्न थे तभी से इस विचारधारा की ओर भी आकर्षित हुए| जेल जीवन में इसका गहरा अध्ययन-मनन किया| जेल से छूटते ही अपनी पत्रिका विप्लव के माध्यम से इसको जनता के सामने पेश किया 'चक्कर क्लब' सिंहावलोकन तथा मार्क्सवाद की पाठशाला में स्तम्भ मार्क्सवादी चिंतन की अभिव्यक्ति के लिए ही सुरक्षित रहते थे।

4.5.2 सामाजिक मान्यताएँ

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में समाज का महत्वपूर्ण स्थान रहता है| अरस्तू ने भी मनुष्य को सामाजिक समाज सील प्राणी माना है| समाज को छोड़कर व्यक्ति की कल्पना असम्भव सी जान पड़ती है| मार्क्सवाद से प्रभावित यशपाल भी व्यक्ति के जीवन में समाज के महत्व को स्वीकार करते हैं| यशपाल का समस्त साहित्य उनकी सूक्ष्म बुद्धि, पैनी दृष्टि और गहरी सूझबूझ का परिचायक हैं| एक ओर जहां यशपाल ने कोई भी राजनीतिक घटना अबर्णित खबर नहीं छोड़ी, वहीं दूसरी ओर अपने समस्त सामाजिक गतिविधियों को सफलतापूर्वक अंकन किया है आपके साहित्य में समाज की मूलभूत समस्याओं का चित्रण अवतार के निराकरण ही नहीं मिलता बल्कि समस्त पुरानी परम्पराओं और संस्कारों की पृष्ठभूमि पर आधारित समाज रचना स्पष्ट निर्देशन मिलता है| स्वयं यशपाल अपने आप को सामाजिक परिस्थितियों की देन मानते हैं, समाज से अलग अपने अस्तित्व को स्पष्ट नकारते हैं| यशपाल ने सामाजिक मान्यताओं के अन्तर्गत स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, स्त्री का सामाजिक स्थान, जातिगत व्यवस्था, सांप्रदायिकता, नीति, सभ्यता, रूढ़ि-परम्परा, विवाह,यौन समस्या आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।

यशपाल ने सामाजिक विचारों के सम्बन्ध में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध एवं स्त्री के सामाजिक स्थान को लेकर काफी विस्तार से लिखा है| स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर उनके विचार मार्क्सवाद और फ्रायड से प्रभावित हैं| स्त्री की सामाजिक स्थिति यशपाल के साहित्य का महत्वपूर्ण विषय है| वे स्त्री को शोषित श्रेणी का ही एक घटक मानते थे| यशपाल ने अपने सृजनात्मक एवं वैचारिक साहित्य में इस विषय को काफी महत्व दिया है| अपने 'स्त्रियों की स्वतंत्रता और समान अधिकार' इस निबन्ध में उन्होंने इस विषय पर तार्किक चिंतन किया है| भारतीय समाज में स्त्री के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त और व्यवहार का दोगलापन दिखाई देता है, उसके सम्बन्ध

में यशपाल 'चक्कर क्लब' में लिखते हैं- "स्त्री का स्थान माता का जरूर है, वह पूजा की भी पात्र है परन्तु पूजा के पात्र जितने भी देवी-देवता होते हैं वह सब मन्दिर में बन्द रहते हैं और चाबी रहती है पुजारी की जेब में| घर के मन्दिर में भी स्त्री पूजा की प्रतिमा है जरूर परन्तु मन्दिर का पुजारी तो पुरुष ही है इस लिए उसका अधिकार और शासन चलना जरूरी है|" स्त्री सदियों से पुरुष द्वारा घोषित हुई है| उसके सम्बन्ध में पुरुष का व्यवहार स्वार्थ से प्रेरित रहा है| स्त्री को माता की पूज्य पदवी देना और फिर उसे पुरुष के कब्जे में बताना, यह स्वयं पुरुष की इमानदारी का मजाक है| समग्र मनुष्य जाति के विकास के लिए भी उसी स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा का सुधारना आवश्यक है| "स्त्री को पुरुष के उपयोग की सम्पत्ति समझना पुरुष की सम्पूर्ण सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और नैतिक भावना का अपमान करना है| स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्तर पर है| स्त्री-पुरुष की प्रकृति एसआर पशुता के भाव को दूर कर उसे विचार पूर्ण, सूक्ष्मदर्शी और न्याय प्रिय बनाती है| यदि साहित्य से स्त्री के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाला प्रसंग निकाल दिया जाए तो उसमें शेष क्या रह जाता है| यही बात कला, आचार्य और नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में है| पुरुष यदि अपनी पार्श्विक शक्ति से स्त्री पर शासन करता है तो यह उसका अन्याय है, उसके मनुष्यत्व में न्यूनता है| ज्यो-ज्यो मनुष्य सभ्यता के मार्ग पर कदम बढ़ाता जाता है, वह स्त्री के अधिकार और सम्मान को स्वीकार करता जाता है|" यशपाल स्त्री स्वतंत्रता के बहुत हिमायती थे क्योंकि समाजवाद झूठी नैतिकता को ना मानकर नारी की सामाजिक और आर्थिक समानता को महत्व देता है| नारी स्वतंत्र है और अपनी व्यवस्था आप कर सकती है।

4.5.3 आर्थिक मान्यताएँ

हर एक मार्क्सवादी की तरह यशपाल भी मनुष्य जीवन के समस्त परिवर्तनों का मूल अर्थ मानते हैं| मनुष्य के सामाजिक एवं राजनीतिक स्थान उसके आर्थिक सम्बन्धों पर ही निर्भर रहता है| 'अर्थ को लेकर यशपाल की मानता काफी विस्तारित है| वे लिखते हैं- आर्थिक सम्बन्ध या अर्थ शब्द से केवल रुपये-पैसे का ही अभिप्राय नहीं है बल्कि जीवन रक्षा की सब परिस्थितियों और साधनों से मानसिक संतोष प्राप्त कर सकने के अवसर और सुविधा से है| हिन्दू संस्कृति के प्राचीन ग्रंथों में भी धर्म और मोक्ष के साथ काम और अर्थ शब्द का प्रयोग जीवन की वास्तविकता और सम्भावना के रूप में ही किया गया है| रुपये-पैसे के लिए अर्थ शब्द का

व्यवहार इसलिए होता है कि रुपया-पैसा समाज में जीवन-निर्वाह की व्यवस्था को निभाने का सबसे अधिक विकसित साधन है|" भौतिकवाद का मत है कि मनुष्य समाज की व्यवस्था आर्थिक आधार पर बनती है| समाज के विकास क्रम को आर्थिक परिस्थितियां निश्चित करती हैं और समाज के व्यक्तियों के व्यवहार और विचारों का आधार भी आर्थिक होता है| जिन भौतिक परिस्थितियों और जैसी आर्थिक व्यवस्था में व्यक्ति और समाज का जीवन बनता है उन्हीं के अनुकूल अनुभवों से उनके विचार और दृष्टिकोण बनते हैं|

अर्थ का असमान रूप से बंटवारा होने के कारण समाज में 2 वर्ग निर्माण हुए| एक साधन संपन्न शोषक पूंजीपति वर्ग तो दूसरा साधन हीन सर्वहारा वर्ग| अब तक का इतिहास इन्हीं 2 वर्गों के संघर्ष का इतिहास है| मार्क्सवादी यशपाल समाज की अर्थव्यवस्था पर किसी एक वर्ग के अधिकार को अनूचित एवं अन्याय पूर्ण मानते हैं| वह इसका विरोध करते हैं| जीवन निर्वाह के समुचित साधनों पर सब के अधिकार को स्वीकार करते हैं| इसी परिप्रेक्ष में उन्होंने वर्ग संघर्ष को स्वीकार किया है| यशपाल ने लिखा है कि, "मार्क्सवाद जब कहता है कि इतिहास का आधार आर्थिक है तो तात्पर्य होता है कि इतिहास का आधार जीवन के उपायों के लिए संघर्ष है| जीवन के उपायों या साधनों को ही 'अर्थ' कहते हैं| जीवन में संघर्ष होता है जीवन के लिए| जीवन के उपायों में वे सब वस्तुएँ आ जाती हैं जिससे मनुष्य समाज को सन्तोष और तृप्ति होती है| तृप्ति चाहे शारीरिक हो या मानसिक| इसलिए मनुष्य का समाज अपने जीवन में जो कुछ भी करता है वह सब अर्थ के अन्तर्गत जीवन की रक्षा और विकास के लिए होता है।

4.5.4 धार्मिक नीतिगत मानताएँ

यशपाल ने अपनी विचारप्रधान गद्य कृतियों के माध्यम से अर्थ काम के साथ-साथ धर्म, अध्यात्म, ईश्वर, आत्मा, नीति, लोक, परलोक, सांप्रदायिकता आदि बातों पर सविस्तार चर्चा की है| यशपाल ने इन सब के सम्बन्ध में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार किया है| कि धर्म की व्याख्या यशपाल ने कुछ यूं दी है- समाज की व्यवस्था और निर्बाह के नियमों पर ईश्वर की मोहर लगा देने की कला का नाम ही धर्म, मजहब और अध्यात्म है| अध्यात्म और धर्म विश्वास का प्रयोजन समाज की व्यवस्था को दृढ़ता और स्थायित्व देना ही रहा है| अध्यात्म के इस प्रभाव के बावजूद समाज की भौतिक परिस्थितियों अर्थात जीवन निर्वाह के भौतिक साधनों

में परिवर्तन हो जाने पर समाज की व्यवस्था और सत्य-अहिंसा, ईश्वरीय न्याय की धारणा, ईश्वर सम्बन्धी कल्पनाएं तथा विश्वास अर्थात समाज के आध्यात्मिक ज्ञान और विश्वास भी बदल जाते रहे हैं| गाँधीजी की तरह 'मनुष्य जीवन का उद्देश्य ईश्वर का साक्षात्कार है', यशपाल नहीं मानते| गाँधीजी का ईश्वर के प्रति देखने का दृष्टिकोण अध्यात्मवादी एवं कल्पनावादी है| यशपाल के अनुसार मनुष्य के लिए भगवान का अस्तित्व और भगवान के सम्बन्ध में मनुष्य की धारणाएं मनुष्य के भौतिक ज्ञान पर ही निर्भर करती है| यदि मनुष्य भगवान के सम्बन्ध में कोई कल्पना न करें या भगवान के सम्बन्ध में स्वयं कोई धारणा न बनाए तो मनुष्य के लिए भगवान का कोई अस्तित्व न होगा|

यशपाल ने अपने मार्क्सवादी जीवन दर्शन के अन्तर्गत कर्मफल, पुनर्जन्म, पाप-पुण्य आदि बातों को सामन्ती वर्ग एवं शोषक वर्ग का ढकोसला मात्र माना है| वे इसे विश्वास की वस्तु मानते हैं- 'भगवान का स्वर्ग, नर्क और कर्मफल भी भगवान के समान मन और वाणी से परे केवल विश्वास की वस्तु है| केवल दृढ़ विश्वास से ही कोई बात सत्य या वास्तविक नहीं बन सकती| मनुष्य अज्ञान के कारण मिथ्या विश्वास पर भी अपने प्राण निछावर कर सकता है| धूर्त लोग सर्वसाधारण के मिथ्या विश्वास से सदा लाभ उठाते रहते हैं| साधन हीन लोग जीवन में अवसर न पाने को अपने पिछले जन्म के कर्मों का फल मान लेते हैं परन्तु वे पिछले जन्म में पाप कर चुके हैं; इस धारणा के लिए प्रमाण क्या है?' यशपाल ने अपने जीवन दर्शन में हर कहीं वैज्ञानिकता, भौतिकता एवं बुद्धि प्रमान्यता का परिचय दिया है जो उनके धर्म, ईश्वर, पाप-पुण्य आदि बातों में भी दिखाई देता है| हर बात को वास्तविकता एवं बौद्धिकता के कसौटी पर कस-कर ही वे उसे स्वीकार कर लेते थे।

4.5.5 साहित्यिक तथा कलागत मान्यताएँ

उपयोगिता के अभाव में कला एवं साहित्य का कोई मूल्य नहीं है, यशपाल के साहित्य सृजन का मूल सूत्र है| इस सूत्र के पीछे उनका मार्क्सवादी अर्थात प्रकृतिवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है| भावात्मक एवं विचारात्मक दोनों स्तरों पर अपने साहित्य के माध्यम से यशपाल ने साहित्य और जीवन के अटूट सम्बन्ध को उजागर किया है| उनकी गद्य कृतियों के भूमिकाओं के माध्यम से इस विषय पर स्पष्ट संकेत मिलते हैं| साहित्य की व्याख्या करते हुए वे 'बात बात में बात' इस निबन्ध संग्रह में लिखते हैं- उद्देश्यों, आदर्शों और विचारों की

कलापूर्ण अभीव्यक्ति या विचारार्थ समस्याओं की ओर कलापूर्ण ढंग से ध्यान दिलाना ही साहित्य है| यशपाल साहित्य को स्वदेश मानते हैं| "मैं सभी कुछ अप्रयास लिखता हूँ| हाँ, सचेत लेखक होने के कारण स्वदेश लगता हूँ|" साहित्य सौन्दर्य की अनुभूति है| साहित्य का प्रयोजन आनन्द की सृष्टि और उस सृष्टि का विस्तार पर करना है| सौन्दर्य और आनन्द परम लक्ष्य है, परमसुख है। किन्तु सौन्दर्य पदार्थों और भावों का गुण है| सौन्दर्य को आप पदार्थ और भाव से ही पृथक नहीं कर सकते| सुन्दर कोई भाव या पदार्थ रहता है| जैसे सौंदर्य बोध, विना पदार्थ के नहीं हो सकता, वैसे ही कला की अनुभूति और अभिव्यक्ति उद्देश्य और भावों को प्रस्तुत किए बिना नहीं हो सकती| यशपाल कला के लिए वाले सिद्धान्त को नहीं मानते| उनके अनुसार "कला मात्र के लिए वही साहित्य हो सकता है जो विचार शून्य हो| यदि जीवन संघर्ष है और कला जीवन की अभिव्यक्ति है तो कला संघर्ष की द्योतक हुए बिना नहीं रह सकती| जो लोग साहित्य को सौन्दर्य की अनुभूति मानते हैं वे यह भूल जाते हैं कि सौन्दर्य पदार्थों और भावों का गुण है| सौन्दर्य की सत्ता भी मनुष्य के लिए है| प्रकृति का सौन्दर्य मनुष्य की चेतना को प्रसार और निखार प्रदान करता है| सौन्दर्य प्रयोजनातीत नहीं होता|" यशपाल जी के अनुसार- "सौन्दर्य क्या प्रयोजन मानसिक संतोष दे सकना और मनुष्य के जीवन को संतुष्ट और विकाशशील बनाना है तथा शिल्प का प्रयोजन सौन्दर्य की रचना अथवा अभिव्यक्ति है| सौन्दर्य क्षेत्र स्थूल जगत में ही नहीं, भाव जगत में भी है और उससे आगे विचारों और आदर्शों के जगत में भी है|

4.6 निष्कर्ष

प्रथम अध्याय के अध्ययन पश्चात निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

1. यशपाल का जीवन परिचय मालूम हुआ|
2. यशपाल का बाल्य-जीवन काफी विपन्न अवस्था में गुजरा है|
3. उन्होंने अपने जीवन की शुरुआत क्रान्तिकारी कार्यों से की थी| वस्तुत: यशपाल ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने क्रांतिकारी आन्दोलन का उत्कर्ष और ह्रास दोनों देखें|
4. यशपाल ने साहित्य-सृजन का प्रारम्भ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से किया था|

5. यशपाल बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे| लेखक, कलाकार, चित्रकार, पत्रकार आदि सभी भूमिकाओं को उन्होंने बखूबी निभाया|
6. कविता को छोड़कर लगभग सभी विधाओं पर यशपाल ने लेखनी चलाई है|
7. यशपाल की कृतियों का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी हुआ है|
8. जीवन में सभी मान सम्मानों, उपाधियों, पुरस्कारों ने उनके चरण चूमकर उनकी महानता को मान्यता दी है|
9. यशपाल का लिखा लगभग सम्पूर्ण साहित्य उनके जीवनकाल में ही प्रकाशित हो चुका था|
10. यशपाल के पुस्तकों के आवरण लाल होते थे, जिससे यशपाल की मानसिकता का और उनकी विचारधारा का बड़ा ही ठोस आधार मिलता है|
11. यशपाल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं कलागत आदि सभी मान्यताओं पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव दिखाई देता है| अर्थात यशपाल का जीवन-दर्शन मार्क्सवाद के निकट है|
12. यशपाल गाँधीवादी विचारधारा को एक कालबाह्य विचारधारा मानते हैं|
13. यशपाल के सामाजिक विचार प्रगतिशीलता के परिचालक हैं|
14. यशपाल मनुष्य जीवन के समस्त परिवर्तनों का मूल 'अर्थ' मानते हैं|
15. यशपाल की दृष्टि में 'धर्म' एक असंगत वस्तु है|
16. 'उपयोगिता के अभाव में कला एवं साहित्य का कोई मूल्य नहीं है' यशपाल के साहित्य-सर्जन का मूल सूत्र है|
17. यशपाल की समस्त मान्यताएँ उनकी सूक्ष्म बुद्धि पैनी दृष्टि और गहरी सूझ-बूझ का परिचायक हैं|

पंचम अध्याय

गिजुभाई बधेका तथा यशपाल जी के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण

गिजुभाई बधेका का जन्म गुजरात प्रान्त में होगा जबकि प्रोफ़ेसर यशपाल का जन्म पंजाब के प्रान्त में हुआ था यशपाल जी 1986 से 1991 तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष थे और 2007 से 12 तक वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलपति रहे| जबकि गिजुभाई बधेका जी पूरी तन्मयता के साथ बारीकी से अध्ययन कर मुकदमे का जिरह करते थे| गिजूभाई बधेका जी का स्वयं का स्कूल भी था| इन दोनों लोगों ने क्रान्तिकारी जीवन में बड़ा ही संघर्ष किया| इन दोनों महापुरुषों ने विद्यालयों में भय एवं तनाव से ग्रस्त बच्चों की मानसिक स्वतन्त्रता एवं बाल-केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था के लिए संघर्ष किया| सरलता और सादगी का इन दोनों महापुरुषों के जीवन में सर्वोपरि स्थान रहा| विशाल विश्वदृष्टि के कारण दोनों महापुरुष मानवता से ओत-प्रोत रहे दोनों ने जो कार्य किया, पूरी तल्लीनता से किया सीखने की दृष्टि से किया और प्रयोग की भावना से किया|

5.1 जीवन दर्शन का तुलनात्मक विश्लेषण

दोनों दर्शनिकों के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण करने से पहले उनके जीवन दर्शन का तुलनात्मक विश्लेषण आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति के जीवन दर्शन का प्रत्यक्ष प्रभाव उनके विचारों में समाहित होता है| गिजूभाई भी सत्य को शान्तिपूर्ण जीवन के लिए आवश्यक मानते थे| वे कहते थे कि बालक के झूठ बोलने का मूल कारण उसके परिवार के बड़े सदस्य ही होते हैं| वे कहते थे कि बालक अपने बड़े-बुजुर्गों की शक्ति और दहशत के मारे झूठ बोलने लगता है क्योंकि वह उनके सामने सत्य बोलने में डरता है| गिजुभाई के अनुसार झूठ का मूल्य है भय| अतः सबसे पहला काम है बालक को भय से मुक्त कराना| बुजुर्गों वाली कठोर अनुशासन की धारणा अनुचित है| गिजूभाई की दृष्टि में निर्भय बालक ही सत्य बोलता है|

गिजुभाई ने मानव के बारे में अपना व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है| उनके अनुसार धर्म का तत्व अन्तरात्मा में रहता है| उनके लिए अन्तरात्मा का द्वार खोलकर उसमें झांकना पड़ता है| कर्मकाण्ड, पाण्डित्य, हठयुक्त जप-तप आदि धर्म नहीं है, धर्म सुन्दर कवच मात्र है गिजूभाई के अनुसार धार्मिकता का मूल्य इसी भावना के जागृत होने से में है, अन्यथा वह दम्भपोषी सिद्धान्त बन जाती है| धार्मिकता का अर्थ-कीर्तिदान नहीं, स्वार्थपूर्ण समर्पण या प्रतिफल की उम्मीद में की गई भक्ति नहीं, धार्मिकता एक वृत्ती है| सद्-असद्, विवेक बुद्धि धर्म मार्ग का आकाशदीप है| संयमित क्रिया-शक्ति में इसकी प्राण-शक्ति विद्यमान रहती है| सद्-असद्, विवेक-बुद्धि अर्थात् इन्द्रियों की शुद्धि व संस्कारता तथा मन की निर्मल ग्रहण-शक्ति, मापन-शक्ति व निर्णय-शक्ति और क्रिया-शक्ति का संयमन अर्थात् निर्णाय-प्रेरित क्रिया के प्रत्यक्ष पुनरावर्तन से उत्पन्न होने वाली क्रिया को करने या न करने का बल निर्णय-शक्ति एवं बल पूर्वक उपदेश से अद्भुत नहीं होता न तर्क-विषयक पुस्तकें पढ़ने से हाथ लगते हैं अपितु ये तो इन्हें करने की क्रिया से ही अद्भुत होते हैं।

गिजुभाई के अनुसार धार्मिकता एक और तत्व की अपेक्षा रखती है और वह है, प्रेम जिसने हिन्दु जाति को गौरव प्रदान किया है| जीवन की उत्कृष्टता व परम सफलता प्रेम में निहित है| प्रेम ने समस्त सचराचर जगत को एक सूत्र में बाँध रखा है| यह तत्व जन्तुओं आदि से लेकर देवताओं तक की दुनिया में विद्यमान है| यह तत्व बालक को माँ के दूध के साथ उपलब्ध होता है और वहाँ से वह आगे विकसित होता है| यह तत्व मनुष्य के लिए संजीवनी है|

गिजुभाई की दृष्टि में मानव, समाज का ही एक अंग है| वे मानवीय गुणों से युक्त मानव को ही सच्चा मानव कहते हैं| उनके अनुसार अभी तक मानव अपनी कीमत बाहरी स्तुति-निंदा के स्तर पर ही आंकता रहा है| समाज ने भी उसी को धर्मी कहा है जो धर्म का कवच मजबूत से पकड़े रखता हो| उसी को नैतिक कहा है जो नीति बाहरी बन्धनों को प्रत्यक्षतया तोड़ता न हो| उसी को अहिंसक कहा है जो चींटी-मच्छर या इंसान को सामने न मारता हो| उसी को व्यवस्थित, संयमी व संतुलित कहा है जो किसी प्रसंग को सम्भाल लेता हो-व्यवहार को निबाह लेता हो| गिजूभाई के विचार से सही मानव कोई अन्य हो सकता है चाहे समाज, धर्म या ईश्वर न हो वह सिर्फ अपने मन्तव्यों से ही प्रटिबद्ध रहता है, उन्हीं के लिए अपने जीवन-मरण का बलिदान देता है।

यशपाल का जन्म 3 दिसम्बर 1903 को पंजाब में, फ़ीरोज़पुर छावनी में एक साधारण खत्री परिवार में हुआ था। उनकी माँ श्रीमती प्रेमदेवी वहाँ अनाथालय के एक स्कूल में अध्यापिका थीं। यशपाल के पिता हीरालाल एक साधारण कारोबारी व्यक्ति थे। उनका पैतृक गाँव रंघाड़ था, जहाँ कभी उनके पूर्वज हमीरपुर से आकर बस गए थे। पिता की एक छोटी-सी दुकान थी और लोग उन्हें 'लाला' कहते-पुकारते थे। बीच-बीच में वे घोड़े पर सामान लादकर फेरी के लिए आस-पास के गाँवों में भी जाते थे। अपने व्यवसाय से जो थोड़ा-बहुत पैसा उन्होंने इकट्ठा किया था उसे वे, बिना किसी पुख़्ता लिखा-पढ़ी के, हाथ उधारू तौर पर सूद पर उठाया करते थे। अपने परिवार के प्रति उनका ध्यान नहीं था। इसीलिए यशपाल की माँ अपने दो बेटों यशपाल और धर्मपाल को लेकर फ़िरोज़पुर छावनी में आर्य समाज के एक स्कूल में पढ़ाते हुए अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के बारे में कुछ अधिक ही सजग थीं। यशपाल के विकास में ग़रीबी के प्रति तीखी घृणा आर्य समाज और स्वाधीनता आंदोलन के प्रति उपजे आकर्षण के मूल में उनकी माँ और इस परिवेश की एक निर्णायक भूमिका रही है। यशपाल के रचनात्मक विकास में उनके बचपन में भोगी गई ग़रीबी की एक विशिष्ट भूमिका थी।

5.2 शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण

गिजुभाई बधेका तथा यशपाल जी के जीवन दर्शन से सम्बन्धित उपरोक्त विश्लेषणोंपरान्त इनके शैक्षिक विचारों में निहित समानताओं एवं असमानताओं का विश्लेषण प्रस्तुत करते है| इनके शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण निम्नलिखित तीन मुख्य बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है-

5.2.1 शिक्षा की अवधारणा

5.2.2 शिक्षा के उद्देश्य

5.2.3 शिक्षा सम्बन्धी बिन्दुओं का तुलनात्मक विश्लेषण

5.2.1 शिक्षा की अवधारणा

गिजूभाई 'बालकेन्द्रित' शिक्षा के पक्षधर हैं| उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों के नैसर्गिक मानसिक क्षमताओं के विकास में योगदान करे और उसे समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी एवं सबल नागरिक के रूप में तैयार कर सके| गिजूभाई शिक्षा के माध्यम से बालक की बौद्धिक एवं मानसिक विकास पर अधिक

बल देते हैं| इसके साथ ही मानवीय गुणों जैसे- सत्य, अहिंसा, करुणा, स्नेह, दया, त्याग, परोपकार, ईमानदारी, सद्भाव, मैत्री, भाईचारा, परिश्रम, सहयोग आदि के विकास को भी आवश्यक मानते हैं| गिजूभाई ने शिक्षा की परिभाषा को निम्नलिखित रूप से व्यक्त किया है- शिक्षा एक जीवन-व्यापी प्रक्रिया है| इस प्रक्रिया का उदगम हमारे भीतर से है| इस प्रक्रिया के उदगम का मूल है- अन्तरात्मा की भूख| हम किसी को तब तक नहीं सिखा सकते जब तक कि वह स्वयं सीखने के लिए अभिप्रेरित ना हो| विकास को आधारशिला अनुभव है और अनुभव स्वतंत्र क्रिया में निहित है। शिक्षा व्यवस्था को पटरी पर लाने के उपाय सुझाने की जिम्मेदारी, लक्षमणस्वामी मुदालियर से लेकर कस्तूरीरगंन तक, वैज्ञानिकों को सोंपने की एक परम्परा देश में बन गई है। इस परम्परा को निभाने वालों में एक नाम अन्तरिक्ष वैज्ञानिक प्रोफेसर यशपाल कपूर का भी है। 90 वर्ष की आयु में इसी वर्ष उनका निधन होगया है। मूलरूप से वैज्ञानिक होने पर भी प्रोफेसर यशपाल को एक शिक्षा शास्त्री के नाते अधिक याद किया जा रहा है।

5.3.2 शिक्षा के उद्देश्य

गिजुभाई ने बालक के तन-मन का दर्शन रचा था| एक ऐसी अभूति की प्रेरणा से-जो थी तो एक डॉक्टर एवं मनोविश्लेषक, किन्तु जिस ने ना केवल इटली बल्कि सारे संसार के बच्चों के चेहरे पर आनन्द की वर्णमाला लिख दी| गिजुभाई ने माण्टेसरी पद्धति को अपनाकर बालकेन्द्रित शिक्षा का जो मॉडल रचा और उसे प्राथमिकशाला में आजमाकर यह साबित कर दिया कि लक्ष्मी शंकर के समान एक कल्पनाशील शिक्षक किस प्रकार शिक्षा की समूची अवधारणा ही बदल सकता है| जो मुख्य तत्व गिजूभाई के बाल दर्शन उभरकर आते हैं, वे निम्नलिखित हैं-

- बच्ची-बच्चे घर के अनुभवों की दुनिया लेकर शाला में आयें तथा शाला के आनन्द और आजादी की दुनिया लेकर घर जायें।
- बच्ची-बच्चे परिवेश, पड़ोस या वातावरण से सीखते हुए आए और शाला में अपने ज्ञान को आजमाएँ और नया ज्ञान साथ ले जायें|

- बच्चों का निर्णय ही सीखने और सिखाने का निर्णय हो| ऐसे अवसर पैदा करें कि बच्चे सीखने की आजादी महसूस करें तथा स्कूल उनके लिए घर के सामान लगे और शिक्षक उनके माता-पिता तथा दोस्त की तरह प्रेम करें|

5.3.3 शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न बिन्दुओं का तुलनात्मक विश्लेषण

(1) विद्यालय

गिजुभाई बधेका एक तरफ जहाँ बाल-विकास के अनुरूप शाला के वातावरण की रचना कहते हैं, वहीं दूसरी तरफ कुछ ऐसी बाधाएँ हैं जो शाला के समुचित संचालन में बाधा उत्पन्न करती है| अत: उनके अनुसार शाला का वातावरण समस्त विक्षेपों से मुक्त करना चाहिए| बालक का मन भटकता रहता है, पल भर भी स्थिर नहीं रहता, यह गलत है| यदि बालकों के कार्यों में कोई बाधा उत्पन्न न हो और उसे आनन्द मिल रहा हो तो बालकों को कई-कई घण्टों तक अपने कामों में तल्लीन देखा जा सकता है| इसलिए शाला को एकाग्रता में बाधा उत्पन्न करने वाले अन्य विघ्नों से दूर रखना चाहिए-

- शाला किसी शोर-शराबे वाली जगह पर न हो|
- बालकों की संख्या के अनुपात में पर्याप्त साधन उपलब्ध हो|
- शाला की सामग्री अव्यवस्थित रूप से बिखरी हुई न हो|
- शाला का वातावरण हमेशा प्रवाहमान तथा उसमें हमेशा नयापन हो|

(2) शिक्षक

गिजुभाई तथा यशपाल जी दोनों का विचार था कि शिक्षक को बच्चों से प्यार होना चाहिए तथा उन्हें 'बाल-मनोविज्ञान' का ज्ञान होना चाहिए ताकि वह बालक की 'व्यक्तिक भिन्नता' के अनुसार बालक को शिक्षा दे सकें| दोनों का ही विश्वास था कि शिक्षक में दायित्व-बोध होना चाहिए| शिक्षक का कार्य केवल कक्षा तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह राष्ट्र निर्माण का एक कारक है| यशपाल जी कहते हैं शिक्षक का कार्य क्षेत्र केवल

कक्षा तक ही सीमित नहीं है अपितु उसके बाहर भी है| आजकल शिक्षक वेतन भोगी कर्मचारी की भाँति कक्षा में पढ़ाने तक ही अपना कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं| कक्षा के उपरांत वे छात्र के प्रति अपना कोई दायित्व नहीं समझते जिससे छात्रों की बड़ी हानि होती है| गिजूभाई कहते हैं कि 'शिक्षक' संस्था के प्रमाण के समान हैं| उनकी दृष्टि में मालिक या अफसर को खुश करने वाले न होकर बालक-बालिकाओं की खुशी की शिक्षक होने चाहिए| शिक्षक और बच्चों के बीच दर के बजाय प्रेम का सम्बन्ध हो,अधिकारों के उपयोग के बजाय आत्मीयता और मधुरता के सम्बन्ध हों और शिक्षक बच्चों के साथ मित्रवत व्यवहार करें एवं उनके कामों में मित्र की तरह ही भागीदार बनें|

(3) विद्यार्थी

गिजूभाई कहते थे कि बच्चे चाहे बाल-मन्दिर में हों या प्राथमिक शालाओं में, वे कोरी स्लेट की तरह कभी नहीं होते| उनके पास अपना बाल-व्याकरण होता है, अपनी भाषा होती है, अपना शब्द भण्डार होता है तथा अपना गणित होता है| बच्चे अपना खेल स्वयं खोज लेते हैं| खेल के कोई उपकरण न हो तो भी वे खेल खोज लेते हैं, उसके नियम बना लेते हैं और अपने -ही निर्णय से उन्हें भी खेल लेते हैं| अतः बालक एक सम्पूर्ण मनुष्य है, उसमें बुद्धि है, भावना है, भाव है तथा उसका अपना एक जीवन है| बालक में विकास की अनेक विशेषताएं और सम्भावनायें हैं जिसका विकास स्वतंत्र वातावरण में ही सम्भव है| अतएव बालक की रुचियों और इच्छाओं को महत्व प्रदान किया जाना चाहिए तथा बालकों के साथ विनम्रता और प्रेम का व्यवहार किया जाना चाहिए| इस सम्बन्ध में माण्टेसरी ने कहा है कि- "बालक एक शरीर है जो बढ़ता है, एक आत्मा है जो विकसित होती है| विकास के इन दोनों स्वरूपों को न तो हमें ग्रुप बनाना चाहिए और न ही दबाना चाहिए, बल्कि उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए जब किसी शक्ति का क्रमानुसार प्रकटीकरण हो|"

(4) पाठ्यक्रम

गिजूभाई ने अपने शिक्षण का विधान बालकों को केन्द्र में रखकर किया है| वह स्वतंत्र एवं स्फूर्ति को ही शिक्षा मानते हैं और कहते हैं कि बालक को क्या पढ़ना चाहिए और क्या नहीं पड़ना चाहिए, बालक के लिए क्या उचित है तथा क्या अनुचित है, क्या धर्म है तथा क्या अधर्म है, इसका निर्णय में नहीं कर सकता| मैं इतना

अवश्य कह सकता हूँ कि बाल-शिक्षा की व्यवस्था अपने-आप चलेगी और बालक स्वत: ही शिक्षित होगा बशर्ते कि बालक को सीखने के लिए उचित वातावरण एवं साधन उपलब्ध करा दिया जाए| गिजुभाई अपने पाठ्यक्रम में इन्द्रियों के प्रशिक्षण पर विशेष बल देते हैं| वे कहते थे कि इन्द्रियां महल के झरोखे हैं जिनसे बाह्य जगत का ज्ञान अन्दर जाता है और अन्दर विद्यमान रहने वाली शक्तियां बाहर आती हैं। माण्टेसरी की भाँति गिजूभाई विभिन्न विषयों का पुस्तकीय अध्ययन नहीं कराते थे बल्कि ऐसी पद्धति निर्मित कर देते थे, ऐसे साधन उपलब्ध करा देते थे कि बालक स्वयं अपनी इन्द्रियों का विकास करके विषय से सम्बन्धित योग्यता प्राप्त कर लेते थे| इस प्रकार उनकी शिक्षण-पद्धति नेत्रों की शिक्षा द्वारा रूप एवं रंग का रहस्य समझने का द्वार खोलती है| स्पर्श के शिक्षण द्वारा प्रकृति के कठोर-मुलायम, चिकनी-खुरदरी, गरम-ठण्डा इत्यादि समप्रत्ययों को समझने की शक्ति मिलती है| संगीत की देवी कानों में प्रवेश करके ज्ञान का मन्दिर खोल देती है तथा मनुष्य की शक्तियों को विकसित करके उसे स्वयं को जानने का अवसर देती है| गिजूभाई के शिक्षण -विधि से व्यक्ति सीधे ही चित्रकार या गायक नहीं बन जाता और न ही वह सीधे कवि, लेखक या गणितज्ञ, बन जाता है परन्तु जीवन की किसी भी दिशा में जाने के लिए उसका सरल से सरल मार्ग प्रशस्त हो जाता है|' बालकों की सृजनात्मक क्षमता में दृढ़ विश्वास होने के कारण गिजुभाई बालकों को प्रकृति के प्रांगण में ले जाने, वहाँ उनको प्रकृति की गोद में घण्टों लोटने देने, बन्दरों की भाँति पेड़ पर चढ़ने व कूदने देने, कल-कल बहती नदी के किनारे ले जाकर उन्हें अपनी अंजलिओं से जी भर कर पानी पीने देते, जंगली फूलों को तोड़कर उनकी मालायें बनाने, देशों से रस्सी बनाने और ऐसे ही भाँति-भाँति के काम करने देने की व्यवस्था अपने पाठ्यक्रम में किए हैं| उनका कहना है कि हर बच्ची-बच्चा यदि स्वप्नदर्शी है तो वह सृर्जन भी कर सकता है| इसलिए प्राथमिक शालायें बच्चों की हवन शालायें न बनें| मिट्टी, लकड़ी, कागज व वस्तुओं से कारीगरी करना तथा चित्र बनाना बालकों के लिए आवश्यक है| अतः गिजुभाई बच्चों में क्रियात्मक एवं भावात्मक शिक्षण के लिए कला एवं कारीगरी की शिक्षा पर भी विशेष बल दिया है। गिजूभाई के विचार से पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिससे समाज और व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्कूल के पाठ्यक्रम का विकास, व्यक्तिगत विभिन्नताओं, प्रेरणा, मूल्यों और सीखने के सिद्धांतों के मनोवैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होना चाहिए| पाठ्यक्रम बनाते समय शिक्षक यह ध्यान रखता है कि शिक्षार्थी के क्रियाओं से ये आवश्यकताएं

सर्वोत्तम रूप से पूर्ण हो सकती हैं| भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में तथा विभिन्न स्तरो पर कुछ सीखने की क्रियाएं वांछनीय हो सकती हैं और कुछ अवांछनीय, यह निश्चित करने में शिक्षक को विकास की विभिन्न स्थितियों का मनोवैज्ञानिक ज्ञान होना चाहिए| गिजुभाई ने अपनी बाल-केन्द्रित शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नांकित विषयों को स्थान दिया है-

- कविता शिक्षण, कहानी शिक्षण
- व्याकरण शिक्षा
- इतिहास, भूगोल शिक्षण तथा गणित शिक्षण
- चित्रकला और खेलकूद शिक्षण
- धार्मिक शिक्षा

गिजूभाई का यह पाठ्यक्रम प्राथमिक स्तर तक सीमित है| गिजूभाई ने इसे बाल केन्द्रित शिक्षा के नाम से प्रकाश में लाया है|

(5) शिक्षण-विधि

गिजुभाई बधेका के द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधियों का विवेचन प्रासंगिक है-

शिक्षा में बालक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने से शिक्षक के कर्तव्य में भी कायापलट हो गया है| अब उसका कार्य प्रेरणा देना और निरीक्षण करना हो गया है| उसे बाल-मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिए जिससे वह बालक की प्रवृत्तियों, शक्तियों और अभिरुचियों को समझ ले और उसके विकास में पूर्ण सहयोग दे सकें| इसी से जान ऐडम्स ने कहा है कि- “शिक्षक को न केवल पाठ्य विषय ही जानना चाहिए वरन् उस बालक का ज्ञान भी होना चाहिए जिसे वह शिक्षा देता है|”

बालक का अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान के चार प्रमुख विधियां हैं| पहली विधि प्रेक्षण की है, जिसमें शिक्षक बालक से सम्बन्धित बातों का अवलोकन करता है और विभिन्न परिस्थितियों में उसकी प्रतिक्रिया का चयन करके उसके बौद्धिक स्तर, विकास-क्रम,अभिरुचि इत्यादि का पता लगाता है|

दूसरी विधि प्रयोग की है, जिसमें शिक्षक बालक की कोई विशेष मनोदशा का अध्ययन करने के लिए उसकी उपयुक्त परिस्थितियों का एक कृतिम पर्यावरण बनाता है और उसमें वांछित मनोदशा का अध्ययन करता है|

तीसरी विधि अन्तर्निरीक्षण की है, इसमें शिक्षक अपने स्वयं के वाल्यकाल का स्मरण एवं चिंतन करके बालक की अनुभूति तथा आंतरिक भावनाओं की खोज करते हैं|

चौथी विधि मनोविश्लेषण की है, जिसमें व्यक्ति की दबी हुई अचेतन भावनाओं का अध्ययन किया जाता है|

उपरोक्त विद्वान द्वारा प्रदत शिक्षण विधियों का यदि वर्तमान शिक्षण व्यवस्था में प्रयोग किया जाए तो शिक्षा का कायाकल्प हो सकता है।

(6) अनुशासन

आज की शिक्षा संगोष्ठी में एक ही बात सुनाई देती है कि बच्चों में अनुशासन तथा चरित पर बल नहीं रह गया है लेकिन इस अनुशासनहीनता और चरित्रहीनता का क्या कारण है इस पर ध्यान नहीं दिया जाता| वास्तव में इस अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण आज की शिक्षा पद्धति, क्रियाशक्ति का विरोध, बालक को क्रिया न करने देना अपितु स्वयं करना, बालक को पढ़ने न देना अपितु स्वयं पढ़ाना बालक को सोचने न देना, अपितु अपने विचार भरना| गिजुभाई और डॉ मारिया माण्टेसरी ने बाल मनोविज्ञान का अत्यन्त गहनता पूर्वक अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चा उस मधुमक्खी की तरह है जो एक फूल से दूसरे फूल पर जाकर बैठती है, जब तक कि उसे वह फूल नहीं मिल पाता जहाँ से वह शहद ग्रहण कर सन्तुष्ट हो| जब तक बच्चे को अपने अन्दर आश्चर्यजनक स्वभाविक क्रियाशीलता के जाग्रत होने का अनुभव न हो जिससे कि उसके चरित्र और मस्तिष्क का निर्माण होना होता है तब तक वह काम नहीं कर सकेगा| ऐसी अस्थिरता पूर्ण परिस्थिति में शिक्षक के उचित मार्गदर्शन द्वारा जब बच्चे का आन्तरिक व्यक्तित्व जागृत होता है, तो विभिन्न क्रियाओं को करते समय उसका ध्यान किसी वस्तु की ओर केन्द्रित हो जाता है और वह उस वस्तु के प्रति आनन्दित होने लगता है| प्रत्येक बच्चे में स्वाभाविक रूप से गतिविधि करने की रचनात्मक प्रवृत्ति होती है यदि उसके मस्तिष्क की रचना का कोई अवसर नहीं मिलता तो उसका मस्तिष्क रिक्त रह जाता है, जो कई दोषों का मूल होता है|

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि विद्वान द्वय की शैक्षिक अवधारणाओं का वर्तमान समय में अत्यन्त महत्वता है| इस भ्रमित समाज की दशा एवं दिशा को गति प्रदान करने के लिए उनके द्वारा प्रदत्त शैक्षिक विचारों का अनुपालन कर हम समाज को आकाश की नई ऊँचाइयों पर पहुँचा सकते हैं।

षष्टम् अध्याय

गिजुभाई बधेका तथा यशपाल जी के शैक्षिक विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता

वैदिक काल से ही हमारे ऋषियों महार्षियों ने अमूल्य निधि के रूप में जो जीवन दर्शन, विचार, शैक्षिक विचार, अभिव्यक्तियां प्रदान की हैं वह हमारे लिए एक धरोहर के रूप में विद्यमान हैं, जिसे हम लोगों तथा हमारी आने वाली पीढ़ी दर पीढ़ी को संजोकर रखना होगा| गुरु वशिष्ठ, गौतम, कपिल, महर्षि कणाद, बारायण, से लेकर आदि शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द की परम्परा आज भी विद्यमान है| समग्र रूप में देखा जाए तो आधुनिक काल में गोपाल कृष्ण गोखले, महर्षि अरबिन्द, गाँधी जी तथा गिजुभाई आदि महापुरुषों के शैक्षिक अभिव्यक्तियों की आज नितान्त उपादेयता है| इनके विचारों को अधिग्रहीत कर हम वर्तमान पीढ़ी को सजग कर भविष्य के इमारत का निर्माण कर सकते हैं|

प्रस्तुत शोध क्रम में महात्मा गाँधी तथा गिजुभाई बधेका के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता आज समीचीन है| किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी वास्तविक सम्पत्ति उसके देशवासी और उससे बड़ी शक्ति उसकी गुणवत्ता होती है| इतिहास साक्षी है कि देशों का उत्थान या पतन उनके नागरिकों का चरित्र, उनकी योग्यता तथा कार्य कुशलता, उनके बौद्धिक विकास एवं उनकी राष्ट्रीय निष्ठा का सदा अनुगामी रहा है| राष्ट्र का निर्माण उसके नागरिकों से होता है और नागरिकों के व्यक्तित्व का निर्माण शिक्षा से होता है| व्यक्तियों के शैक्षिक विचारों की गुणवत्ता ही ऐसा माध्यम है, जिससे हम उचित-अनुचित पाप-पुण्य, सत्य-असत्य में भेद करने की क्षमता विकसित कर पाते हैं अत: विद्वान द्वय के शैक्षिक विचारों, उनके मूल्यों, आदर्शों तथा अभिव्यक्तियों की आज के भ्रमित समाज के लिए नितांत आवश्यक है|

प्रस्तुत शोध के सन्दर्भ में अब गिजूभाई तथा यशपाल जी के विचारों की प्रासंगिकता निम्न बिन्दुओं के आधार पर की जा सकती है।

6.1 शिक्षा के उद्देश्यों के सन्दर्भ में

गिजुभाई बधेका ने बालक के तन-मन का दर्शन रचा था| गिजूभाई ने माण्टेसरी पद्धति को अपनाकर बाल शिक्षा का जो मॉडल रचा और उसे प्राथमिक शाला में आजमाकर यह साबित कर दिया कि लक्ष्मीशंकर के समान एक कल्पनाशील शिक्षक किस प्रकार शिक्षा की समूची अवधारणा ही बदल सकता है| गिजूभाई के बाल-दर्शन से जो मुख्य तत्व उभरकर आते हैं, वे निम्न है-

- बच्ची-बच्चे परिवेश, पड़ोस या वातावरण से सीखते हुए आए और शाला में अपने ज्ञान को आजमाएं और नया ज्ञान साथ ले जाए|
- बच्ची-बच्चे घर के अनुभवों की दुनिया लेकर शाला में आए तथा शाला के आनन्द और आजादी की दुनिया लेकर घर जाए|
- बच्चों का निर्णय ही सीखने और सिखाने का निर्णय हो| ऐसे अवसर पैदा करें कि बच्चे सीखने की आजादी महसूस करें तथा स्कूल उनके लिए दोस्त बने और दोस्त, माता-पिता एवं शिक्षक स्कूल बने|

गिजुभाई के शैक्षिक विचारों के क्रम में, जो उन्होंने शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण किया है, के अनुसार-

- बालक का सर्वांगीण विकास करना
- प्रकृति के अनुभव द्वारा शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना
- छात्र अन्तर क्रिया को विकसित करना
- बालकों में सृजनात्मक क्षमता का विकास करना
- खेल विधि द्वारा शिक्षा प्रदान करना

- स्वाभाविक संवेगात्मक रुचियों को महत्व देना
- अनुकूल शैक्षिक वातावरण का निर्माण करना
- बालकों को दण्ड एवं भय से दूर रखना

उपरोक्त उद्देश्यों पर दृष्टिपात करने से यह पता चलता है कि गिजुभाई द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक उद्देश्य वर्तमान सामाजिक ढांचे के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है|

6.2 पाठ्यचर्या के सन्दर्भ में

गिजुभाई बधेका द्वारा प्रदत पाठ्यक्रमों पर दृष्टिपात करना परम आवश्यक है| गिजूभाई ने अपने शिक्षण का विधान बालकों को केन्द्र में रखकर किये हैं| वह स्वातंत्रय एवं स्वस्फूर्ति को ही शिक्षा मानते हैं और कहते हैं कि बालक को क्या पढ़ना चाहिए और क्या नहीं चाहिए, बालक के लिए क्या उचित तथा क्या अनुचित है, क्या धर्म तथा क्या अधर्म है इसका निर्णय में नहीं कर सकता| इतना अवश्य कह सकता हूँ कि बाल-शिक्षा की व्यवस्था अपने आप चलेगी और बालक स्वत: ही शिक्षित होगा बशर्ते कि बालक को सीखने के लिए उचित वातावरण एवं साधन उपलब्ध करा दिया जाए|

माण्टेसरी की भाँति गिजुभाई विभिन्न विषयों का पुस्तकीय अध्ययन नहीं कराते बल्कि ऐसी पद्धति निर्मित कर देते थे, ऐसे साधन उपलब्ध करा देते थे कि बालक स्वयं अपनी इन्द्रियों का विकास करके विषय से सम्बन्धित योग्यता प्राप्त कर लेते थे| इस प्रकार उनकी शिक्षण पद्धति नेत्रों की शिक्षा द्वारा रूप एवं रंग का रहस्य समझने का द्वार खोलती है, स्पर्श के शिक्षण द्वारा प्रकृति की अप्रतिम कविता को समझने की शक्ति देती है, कानों की शिक्षा करके संगीत की देवी का मन्दिर खोल देती है तथा मनुष्य की शक्तियों को विकसित करके उसे स्वयं को जानने का अवसर देती है| गिजूभाई के शिक्षण विधि से व्यक्ति सीधे ही चित्रकार या गायक नहीं बन जाता और न हीं वह सीधे कवि, लेखक या गणितज्ञ बन जाता है, परन्तु जीवन की किसी भी दिशा में जाने के लिए उसे सरल से सरल मार्ग प्रशस्त हो जाता है| बालकों की सृजनात्मक क्षमता में दृढ़ विश्वास होने के कारण गिजुभाई बालको को प्रकृति के प्रांगण में ले जाने, वहाँ उनको प्रकृति की गोद में घण्टों

लोटने देने, बन्दरों की भाँति पेड़-पेड़ पर चढ़ने व कूदने देने, कल-कल बहती नदी के किनारे ले जाकर उन्हें अपनी अंजलियों से जी भर कर पानी पीने देने, जंगली फूलों को तोड़कर उनकी मालाएं बनाने, देशों से रस्सी बेतने और ऐसे ही भाँति-भाँति के काम करने देने की व्यवस्था अपने पाठ्यक्रम में किए हैं| उनका कहना है कि हर बच्ची-बच्चा यदि स्वप्नदर्शी है तो वह सृजन भी कर सकता है इसलिए प्राथमिक शालाये बच्चों की हवन शालाये न बने| मिट्टी, लकड़ी, कागज व वस्तुओं से कारीगरी करना, चित्र बनाना बालको के लिए आवश्यक है| अतः गिजूभाई बच्चों में क्रियात्मक एवं भावात्मक शिक्षण के लिए कला एवं कारीगरी की शिक्षा पर भी विशेष बल दिए हैं।

गिजुभाई के उपयोग पाठ्यक्रम के विवेचनोंपरात हम यह कह सकते हैं कि उक्त पाठ्यक्रम को आज की शिक्षा पद्धति में समाहित करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

6.3 शिक्षक के कर्तव्यों के सन्दर्भ में

गिजुभाई बधेका की शिक्षक सम्बन्धी संकल्पना का विवेचन किया जा सकता है- किसी भी व्यवसाय से जुड़ने वाले व्यक्ति में उससे सम्बन्धित योग्यता होनी चाहिए| योग्यता विहीन व्यक्ति व्यवसाय में टिक ही नहीं सकता| शिक्षक का व्यवसाय अतीत और वर्तमान को जोड़ता है तथा वर्तमान में जीवन्त रहकर भविष्य का गठन करता है अर्थात शिक्षक का व्यवसाय समाज-जीवन, समाजशास्त्र और समाज के भविष्य को निर्मित करने वाला व्यवसाय है| गिजूभाई शिक्षक को बच्चों के सहयोगी और मित्र के रूप में देखते हैं| उनके अनुसार शिक्षक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए -

- शिक्षक में गहन अवलोकन की क्षमता होनी चाहिए|
- शिक्षक को धैर्यवान होना चाहिए| बालकों को सीख देने के बजाय उसमें उन लोगों से सीखने की प्रवृत्ति होनी चाहिए| वह उनकी उतनी ही सहायता करें जितनी अपेक्षित है, गैर जरूरी सहायता उनके विकास में बाधक बनती है|
- वाणी में संयम शिक्षक का अन्य गुण है, जहाँ तक सम्भव हो वह मौन कठोर व्रत को धारण करें| जहाँ आवश्यक हो वहीं वाणी का प्रयोग करें|

- शिक्षक को निराभिमानी होना चाहिए| उसमें इतनी नम्रता होनी चाहिए कि उससे कहीं कोई त्रुटि न हो जाए, अथवा बालकों के साथ कहीं कोई अन्याय न हो जाए इसके लिए हमेशा सावधान रहें|

गिजुभाई के जाति या वर्ण शब्दों को यदि व्यापक दार्शनिक अर्थों में देखा जाय तो वे भारतीय मनीषा में निहित चार प्रमुख वर्णों या धर्मों का साक्षात्कार शिक्षक में ही करते थे| स्वयं शिक्षक को भी उनके उन्होंने एक जाति माना था| जिस प्रकार जातियों को अलग-अलग जाति-धर्म है वैसे गिजुभाई भी शिक्षक का अलग-अलग धर्म या कर्तव्य मानते थे।

सेवा धर्म

गिजूभाई का मानना है कि शिक्षक का पहला धर्म या कर्तव्य सेवा भावना है| शिक्षक यदि बालक की सेवा सुश्रुषा, चिन्ता करते हैं तो वैसे ही सेवाभावी बालक भी बनेंगे| हमे हमारे जीवन की, हमारी पाठशाला की, हमारे अध्ययन की ऐसी प्रणाली बनानी चाहिए ताकि उससे सेवा की भावना निरन्तर विकसित हो| इसके परिणाम स्वरूप हमारे लिए गरीब और धनवान, सबल और निर्बल, मूर्ख और विद्वान सभी तरह के बालक एक समान रहेंगे तथा ऐसी वृत्ति पैदा होते ही निजी ट्यूशनें खत्म हो जायेंगी।

छात्र धर्म

जिस प्रकार क्षत्रिय अपनी निडरता के लिए विख्यात है, वैसे ही शिक्षक को निडर रहकर शिक्षा कार सदैव समाज और राज्य के दबाव से मुक्त रहकर करना चाहिए| शिक्षाकर्मी और शिक्षक संस्थायें निरन्तर स्वतंत्र होनी चाहिए| कई बार तो उसे शिक्षण कार्य में बाधक बनने वाले समाज या राज्य के सामने अगर लड़ना पड़े और उसे उलट डालना पड़े तब भी शिक्षण कार्य से अलग हटकर उसे ऐसा करना चाहिए|

समाज व राज्य के परिवर्तन के साथ शिक्षक का छात्र गिजूभाई निर्बल के संरक्षण में भी मानते थे| वे कहते थे कि बालक का शरीर बहुत निर्बल प्राणी है, उसके अधिकारों का संरक्षण करना ही शिक्षक का धर्म है| सच्चा क्षत्रिय बालक वही है, जो अपने क्रोध को रोककर बालक से प्रेम करें, जो ताकतवर होते हुए भी क्षमाशील हो तथा जो ज्ञानवान होते हुए भी निराभिमानी है।

ब्राह्मण धर्म

शिक्षक की सेवा और छात्र धर्म के समान ही ब्राह्मण धर्म भी गौरवमय धर्म है, क्योंकि जब शिक्षक के पास वास्तविक ज्ञान होगा तभी वह छात्रों को लाभान्वित कर सकेगा| शिक्षक के ब्राह्मण धर्म की सार्थकता शिक्षक के स्वशासित एवं आत्मानुशासन में निहित है, नैतिक आचरण में है, व्यवहारिक क्रियाकलापों में है तथा शैक्षिक उन्नयन एवं सामाजिक प्रगति में है|

उपरोक्त गाँधीजी तथा गिजूभाई की अवधारणानुसार जो शिक्षकों के सम्बन्ध में संकल्पना की गई है वह आज वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में नितांत उपयोगी एवं प्रासंगिक है।

वैश्य धर्म

शिक्षक में वैश्य धर्म की प्रवृत्ति को आवश्यक बताते हुए गिजुभाई कहते हैं- "इस युग में अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ अगर शिक्षक में वैश्य धर्म नहीं है तो उसके शिक्षण कार्य को धक्का लगेगा| यह वैश्य-वृत्ति शिक्षक को अपने स्वार्थ के लिए विकसित नहीं करनी है बल्कि अपने शिक्षण कार्य के लाभ के लिए विकसित करनी है| समाज को यह बात समझनी होगी कि शिक्षक को तथा शिक्षण संस्थाओं को स्वतंत्र और आर्थिक रूप से निश्चित रखने में ही उसका श्रेय है|" अतः शिक्षक आपसी द्वेष भुलाकर, राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित एवं प्रोत्साहित होकर, पारस्परिक सामंजस एवं सद्भावना पूर्ण मैत्री के वातावरण में शैक्षिक उन्नयन एवं गुणवत्ता बनाए रखने के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना जागृत करते हुए अपने सत्य आचरण एवं सद्भाव से समाज में एक नव्य आयाम स्थापित कर एक नया कीर्तिमान स्थापित करें| इसी में शिक्षक का मान-सम्मान और स्वाभिमान निहित है|

वर्तमान भौतिक युग में शिक्षा, शिक्षक एवं अभिभावक सभी का रूप एवं कर्तव्य बदल जाता है| शिक्षा में नित्य नये नवाचारों ने चुनौतियां दी हैं और इससे अध्यापकों की जवाबदेही बढ़ी है| शिक्षक एक ज्योति के समान है, जो कई दीपमालाओं को ज्योति प्रदान करता है, अत: शिक्षक को महत्वपूर्ण चुनौती को स्वीकार करते हुए ऐसी भूमिका अदा करनी है जिससे वह शैक्षिक पर्यावरण का इस प्रकार निर्माण करे कि बालक स्वत: विद्यालय की ओर आकर्षित होकर चला आये।

गिजुभाई बधेका मानते थे कि बच्चे चाहे बाल-मन्दिर में हों या प्राथमिक शालाओं में, वे कोरी स्लेट की तरह कभी नहीं होते उनके पास उनका अपना बाल-व्याकरण होता है, अपनी भाषा होती है, अपना शब्द भण्डार होता है, अपना गणित होता है| एक अकेला बच्ची-बच्चा अपना खेल स्वयं खोज लेता है| खेल के कोई उपकरण न हो तो भी वे खेल खोज लेते हैं, उनके नियम बना लेते हैं और अपने ही निर्णय से उन्हें भी खेल लेते हैं|

अतः बालक एक सम्पूर्ण मनुष्य है| उसमें बुद्धि है, भावना है, भाव है, अभाव है तथा उसका अपना एक जीवन है| बालक में विकसित विकास की अनेक विशेषताएं और संभावनाएं हैं जिनका विकास स्वतंत्र वातावरण में ही सम्भव है| अतएव बालक की अनेक रुचियों और इच्छाओं को महत्व प्रदान किया जाना चाहिए तथा बालकों के साथ विनम्रता और प्रेम का व्यवहार किया जाना चाहिए|

6.5 शिक्षण-विधि सन्दर्भ में

गिजुभाई बधेका के द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधियों का विवेचन प्रासंगिक है-

शिक्षा में बालक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने से शिक्षक के कर्तव्य में भी कायापलट हो गया है| अब उसका कार्य प्रेरणा देना और निरीक्षण करना हो गया है| उसे बाल-मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिए जिससे वह बालक की प्रवृत्तियों, शक्तियों और अभिरुचियों को समझ ले और उसके विकास में पूर्ण सहयोग दे सकें| इसी से जान ऐडम्स ने कहा है कि- “शिक्षक को न केवल पाठ्य विषय ही जानना चाहिए वरन् उस बालक का ज्ञान भी होना चाहिए जिसे वह शिक्षा देता है|”

बालक का अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान के चार प्रमुख विधियां हैं| पहली विधि प्रेक्षण की है, जिसमें शिक्षक बालक से सम्बन्धित बातों का अवलोकन करता है और विभिन्न परिस्थितियों में उसकी प्रतिक्रिया का चयन करके उसके बौद्धिक स्तर, विकास-क्रम,अभिरुचि इत्यादि का पता लगाता है|

दूसरी विधि प्रयोग की है, जिसमें शिक्षक बालक की कोई विशेष मनोदशा का अध्ययन करने के लिए उसकी उपयुक्त परिस्थितियों का एक कृतिम पर्यावरण बनाता है और उसमें वांछित मनोदशा का अध्ययन करता है|

तीसरी विधि अन्तर्निरीक्षण की है, इसमें शिक्षक अपने स्वयं के वाल्यकाल का स्मरण एवं चिंतन करके बालक की अनुभूति तथा आन्तरिक भावनाओं की खोज करते हैं|

चौथी विधि मनोविश्लेषण की है, जिसमें व्यक्ति की दबी हुई अचेतन भावनाओं का अध्ययन किया जाता है|

उपरोक्त विद्वान द्वारा प्रदत शिक्षण विधियों का यदि वर्तमान शिक्षण व्यवस्था में प्रयोग किया जाए तो शिक्षा का कायाकल्प हो सकता है।

6.6 विद्यालय की संकल्पना के सन्दर्भ में

गिजुभाई बधेका एक तरफ जहाँ बाल-विकास के अनुरूप शाला के वातावरण की रचना कहते हैं, वहीं दूसरी तरफ कुछ ऐसी बाधाएँ हैं जो शाला के समुचित संचालन में बाधा उत्पन्न करती है| अत: उनके अनुसार शाला का वातावरण समस्त विक्षेपों से मुक्त करना चाहिए| बालक का मन भटकता रहता है, पल भर भी स्थिर नहीं रहता, यह गलत है| यदि बालकों के कार्यों में कोई बाधा उत्पन्न न हो और उसे आनन्द मिल रहा हो तो बालकों को कई-कई घण्टों तक अपने कामों में तल्लीन देखा जा सकता है| इसलिए शाला को एकाग्रता में बाधा उत्पन्न करने वाले अन्य विघ्नों से दूर रखना चाहिए-

- शाला किसी शोर-शराबे वाली जगह पर न हो|
- बालकों की संख्या के अनुपात में पर्याप्त साधन उपलब्ध हो|
- शाला की सामग्री अव्यवस्थित रूप से बिखरी हुई न हो|
- शाला का वातावरण हमेशा प्रवाहमान तथा उसमें हमेशा नयापन हो|

6.7 अनुशासन के सन्दर्भ में

आज की शिक्षा संगोष्ठी में एक ही बात सुनाई देती है कि बच्चों में अनुशासन तथा चरित पर बल नहीं रह गया है लेकिन इस अनुशासनहीनता और चरित्रहीनता का क्या कारण है इस पर ध्यान नहीं दिया जाता| वास्तव में इस अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण आज की शिक्षा पद्धति, क्रियाशक्ति का विरोध, बालक को क्रिया न करने देना अपितु स्वयं करना, बालक को पढ़ने न देना अपितु स्वयं पढ़ाना बालक को सोचने न देना, अपितु अपने विचार भरना| गिजुभाई और डॉ मारिया माण्टेसरी ने बाल मनोविज्ञान का अत्यन्त गहनता पूर्वक अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चा उस मधुमक्खी की तरह है जो एक फूल से दूसरे फूल पर जाकर बैठती है, जब तक कि उसे वह फूल नहीं मिल पाता जहाँ से वह शहद ग्रहण कर सन्तुष्ट हो| जब तक बच्चे को अपने अन्दर आश्चर्यजनक स्वभाविक क्रियाशीलता के जाग्रत होने का अनुभव न हो जिससे कि उसके चरित्र और मस्तिष्क का निर्माण होना होता है तब तक वह काम नहीं कर सकेगा| ऐसी अस्थिरता पूर्ण परिस्थिति में शिक्षक के उचित मार्गदर्शन द्वारा जब बच्चे का आन्तरिक व्यक्तित्व जागृत होता है, तो विभिन्न क्रियाओं को करते समय उसका ध्यान किसी वस्तु की ओर केन्द्रित हो जाता है और वह उस वस्तु के प्रति आनन्दित होने लगता है| प्रत्येक बच्चे में स्वाभाविक रूप से गतिविधि करने की रचनात्मक प्रवृत्ति होती है यदि उसके मस्तिष्क की रचना का कोई अवसर नहीं मिलता तो उसका मस्तिष्क रिक्त रह जाता है, जो कई दोषों का मूल होता है|

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि विद्वान द्वय की शैक्षिक अवधारणाओं का वर्तमान समय में अत्यन्त महत्वता है| इस भ्रमित समाज की दशा एवं दिशा को गति प्रदान करने के लिए उनके द्वारा प्रदत्त शैक्षिक विचारों का अनुपालन कर हम समाज को आकाश की नई ऊँचाइयों पर पहुँचा सकते हैं।

सप्तम अध्याय-निष्कर्ष

7.1 शोध-निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-अध्ययन के विश्लेषण एवं विवेचन के आधार पर शोध के उद्देश्यों के अनुसार निम्नवत् निष्कर्ष प्राप्त हुए -

1. गिजूभाई तथा यशपाल जी मानव जीवन में शिक्षा के महत्व को भलि-भाँति समझते थे तथा दोनों ने ही शिक्षा को मानव विकास का साधन माना है| गिजुभाई बाल केन्द्रित शिक्षा के पक्षधर हैं| उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों के नैसर्गिक मानसिक क्षमताओं के विकास में योगदान दे और उसे समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी एवं सफल नागरिक के रूप में तैयार कर सके। जबकि यशपाल जी ने बच्चों के बस्ते के बोझ को ध्यान में रखने हुए उन्होंने बताया कि बालक को किताबी कीड़ा न बनाकर प्रयोगों पर जोर देना चाहिए|
2. गिजूभाई शिक्षा के व्यवहारिक उद्देश्यों को अधिक महत्व देते हैं उनके अनुसार शिक्षा बालक के लिए न कि बालक शिक्षा के लिए अर्थात् बालक को उसकी प्रकृति, योग्यता, अभिक्षमता, अभिरुचियों के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए| चूँकि गिजुभाई बाल केन्द्रित शिक्षा के पक्षधर हैं अतः वे उन्हें स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनाने की शिक्षा को महत्व देते हैं| इससे स्पष्ट है कि दोनों विचारक बालक के सर्वांगीण विकास के समर्थक हैं।
3. गिजूभाई की शिक्षक के प्रति मान्यता है कि कोई भी शैक्षिक नवाचार शिक्षक के बिना सम्भव नहीं है अर्थात् वे शिक्षा में गुणात्मक सुधार एवं विकास के लिए शिक्षक को एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में मानते हैं| जबकि यशपाल जी कहते हैं कि बच्चों के बस्ते को ध्यान में रखते हुए शिक्षक को बच्चों पर प्रायोगिक कार्य को करवाना चाहिए जिससे बच्चे का मानसिक विकास तेज हो सके और वह स्वावलम्बी बन सके।

4. गिजुभाई के अनुसार बालक ही शिक्षा का केन्द्र है वे प्रकृतिवादियों की तरह बाल केन्द्रित शिक्षा प्रणाली के समर्थक हैं| अतः विद्वानद्वय बालक को ही शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानते हैं। जबकि यशपाल भी बालक को ही शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानते हैं|
5. गिजूभाई तथा यशपाल जी दोनों ही पाठ्यक्रम की रचना उपयोगिता आवश्यकता व्यक्तिक भिन्नता तथा रुची के आधार पर करना चाहते हैं दोनों ही समान रूप से भाषा, गणित, विज्ञान, समाज विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, उत्पादन शिक्षा तथा कला की शिक्षा देना चाहते हैं| दोनों ही मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम रखना चाहते हैं परन्तु विदेशी भाषाओं को भी महत्व देते हैं| यशपाल जी कहते हैं कि बच्चों को शिक्षा इस प्रकार देनी चाहिए ताकि वे स्वतन्त्र हो सकें|
6. गिजुभाई तथा यशपाल जी दोनों ही जीवन के हर क्षेत्र में अनुशासन के पक्षधर हैं| दोनों ही आत्मानुशासन को प्रमुखता देते हैं तथा दमानात्मक अनुशासन के विरोधी हैं| दोनों ही बालक की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं| यशपाल जी प्रभावात्मक अनुशासन तथा गिजुभाई प्राकृतिक अनुशासन में विश्वास रखते हैं|

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों के ही विचार जितने वह समय में उपयोगी एवं प्रासंगिक थे वे उतने ही आज भी प्रासंगिक हैं तथा अनागत युगों में उनकी प्रासंगिकता यथावत बनी रहेगी| अतः समाज एवं देश में समरसता के भाव का विकास होता एवं विश्व में शान्ति की स्थापना तथा जनों का कल्याण होगा|

7.2 शोध का शैक्षिक महत्व

गिजुभाई बधेका तथा यशपाल जी के शैक्षिक विचारों, आदर्शों तथा मूल्यों का महत्व दृष्टियों से है| दोनों के विचारों के अनुसार शिक्षा का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत वे सभी कार्य आ जाते हैं जिनको पूरा करने से व्यक्ति अपने जीवन को सुखी तथा सफल बनाते हुए सामाजिक कार्यों को उचित समय पर पूरा करने के योग्य बन जाता है| कहने का तात्पर्य है कि सामान्य रूप से शिक्षा व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों का नियंत्रण करते हुए इसकी जन्मजात शक्तियों के विकास में इस प्रकार सहायता प्रदान करती है कि उसका सर्वांगीण विकास हो सके| यही नहीं शिक्षा व्यक्ति में चारित्रिक एवं नैतिक गुणों को

विकसित करके उसके पौढ़ जीवन को किस प्रकार तैयार करती है कि वह अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का संरक्षण करते हुए राष्ट्रीय रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने में तनिक भी नहीं हिचकता|

शिक्षा मानवीय जीवन में व्यक्ति को जहाँ एक ओर वातावरण के वातावरण से अनूप करने तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुए भौतिक संपन्नता को प्राप्त करके चरित्रवान, बिद्धिमान, वीर, साहसी तथा उत्तम नागरिक के रूप में आत्मनिर्भर बनाकर उसका सर्वांगीण विकास करती है वहीं दूसरी ओर शिक्षा व्यक्ति के अन्दर राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता, समाजिक कुशलता तथा अनुशासन भावनाओं को विकसित करके उसे इस योग्य बना देती है कि वह सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करते हुए राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि मानने लगता है| जिस प्रकार एक ओर शिक्षा बालक का सर्वांगीण विकास करके उसे तेजस्वी, बुद्धिमान, चरित्रवान, विद्वान वीर तथा साहसी बनाती है उसी प्रकार दूसरी ओर यह समाज की उन्नति के लिए भी एक आवश्यक तथा शक्तिशाली साधन है| शिक्षा के द्वारा समाज भावी पीढ़ी के बालको को उच्च्च आदर्श, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों तथा परम्पराओं आदि सांस्कृतिक सम्पत्ति को इस प्रकार से हस्तान्तरित करता है कि उनके हृदय में देश प्रेम तथा त्याग की भावना प्रज्वलित हो जाती है| जब ऐसी भावना तथा आदर्शों से भरे हुए बालक तैयार होकर समाज अथवा देश की सेवा का व्रत धारण करते हैं तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हम अपने प्राचीन सुसंस्कार मूल्यों को संजोते हुए एक आदर्श राष्ट्र के निर्माण की ओर अग्रसर हैं|

प्रस्तुत अध्ययन शिक्षा जगत के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है| बालक के सर्वांगीण विकास के लिए बालक को मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है| गिजूभाई ने बालक को विद्यालय के प्रति रुचि पैदा करने तथा कक्षा में शिक्षक की बात को ध्यानपूर्वक सुनने के लिए अनेक विधियाँ बतायी हैं जबकि यशपाल जी ने बालक के सर्वांगीण विकास पर जोर दिया है| यदि हम दोनों शैक्षिक विचारों के विचारों को आत्मसात करके उनके द्वारा बताई गई शिक्षण पद्धतियोंद्वारा शिक्षा प्रदान करें तो हमारा शिक्षण कार्य प्रभावी रहेगा तथा हम बालकों को समाज के लिए योग एवं चरित्रवान नागरिक बना सकेंगे|

7.3 शोध के सुझाव

1. आधुनिक शिक्षा मानवीय आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्य पर आधारित होनी चाहिए|
2. शिक्षा उद्देश पूरक होनी चाहिए जो व्यक्ति के जीवन को सरल एवं सहज बना सके |
3. आधुनिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पर्यावरण, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए|
4. आधुनिक शिक्षा में शिक्षण कार्य एवं अधिगम, शिक्षण अधिगम सामग्री (TLM) एवं क्रियाकलापों पर मुख्यात: फोकस किया जाना चाहिए| जिससे बच्चों का सर्वांगीण विकास हो सके|
5. आधुनिक शिक्षा में बच्चों के मध्य स्पर्धा का विष नहीं घोलना चाहिए, इससे बच्चे गलत कदम उठाने से बच सकेंगे| जैसे- आत्महत्या, लड़ाई-झगणा, किसी का अनावश्यक नुकसान करना|
6. बच्चों को मारना-पीटना नहीं चाहिए मारने पीटने से बच्चों के मन में डर उत्पन्न हो जाता है और इससे बच्चों के अन्दर छुपी हुई प्रतिभा उजागर नहीं हो पाती है|
7. स्कूलों में औद्योगिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो जिससे व्यक्ति रोजगार प्राप्त कर जीवन यापन कर सके|
8. लड़कियों की शिक्षा में उनके भावी जीवन में सम्बन्ध रखने वाली जानकारियों का अवश्य समावेश होना चाहिए|
9. सभी प्रान्तों में एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम हो जिससे एक प्रान्त के विद्यार्थियों को दूसरे प्रान्त में जाने पर दाखिला सम्बन्धी कोई समस्या हो|
10. पाठ्यक्रम में पुस्तकों का बहुत भारी बोझ न रहे| बरन थोड़ी किन्तु उपयोगी पुस्तकों को ही रखा जाना चाहिए|

7.4 भावी शोध हेतु सुझाव

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विभिन्न उद्देश्यों को दृष्टिगत रखकर सम्पन्न किया गया है जो शोधकर्ता की आकांक्षा को सफलीभूत करता है| इस आधार पर नवीन शोध हेतु निम्नांकित सुझाव दिए जा सकते हैं –

1. गिजुभाई बधेका तथा यशपाल जी के शिक्षा दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन को अधिक गहन बनाकर नवीन आयामों की खोज की जा सकती है|
2. गिजूभाई बधेका एवं एनी बेसेंट के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है|
3. गिजुभाई बधेका एवं मार्क्स के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है|
4. यशपाल शर्मा एवं प्रोफेसर यशपाल द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है|
5. गाँधी जी तथा गिजूभाई बधेका के शिक्षा दर्शन का अध्ययन किया जा सकता है|
6. गाँधीजी तथा रविन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है|
7. प्रोफेसर यशपाल जी तथा विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है|
8. गिजूभाई बधेका के शैक्षिक अवधारणा का 21वीं सदी में प्रासंगिकता का अध्ययन किया जा सकता है|
9. यशपाल जी तथा अरविन्द घोष के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है|

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अखिलेश्वर : आधुनिक भारतीय समाज, बदलाव की चुनौतियाँ, समय प्रकाशन,दरियागंज, नई दिल्ली

आर्यनायकम् : वर्तमान शिक्षा की गम्भीर स्थिति, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा, 1954

अग्रवाल, जे०सी० : भारत में प्राथमिक शिक्षा, विद्या विहार, नई दिल्ली, 2003

बधेका, गिजुभाई : शिक्षकों से, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर

बधेका, गिजुभाई : ऐसे हों शिक्षक, गीतांजलि प्रकाशन, जयपुर

मदन मोहन : इलाहाबाद, कैलाश प्रकाशन

मिश्र, आनन्द : भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

सिंह, ओ०पी० : शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन

बधेका, गिजुभाई : माता-पिता बनाना कठिन है, जयपुर, गीतांजलि प्रकाशन 2005

राम,(2000) : गिजूभाई बधेका के बाल शिक्षा-दर्शन की वर्तमान प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में उपादेयता

यादव (2006) : वर्तमान परिपेक्ष में गिजूभाई के शैक्षिक विचारों की उपादेयता

गुप्ता, (2009) : गिजूभाई के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन

http://thewirehindi.com/47964/remembering-educationist-gijubhai-badheka/

https://www.eklavya.in/pdfs/archives/vigyan_bulletin/Hoshangabad_Vigyan_Bulletin_issue_20.pdf

https://www.google.co.in/search?q=गिजुभाई+बधेका+से+संबंधित+समाचार+पत्र&tbm=isch&source=iu&ictx=1&fir=bT1feC

https://www.google.co.in/search?q=गिजुभाई+बधेका+का+शैक्षिक+विचार&sa=X&ved=2ahUKEwjKnfi1rpDkAhW

https://www.google.co.in/search?q=गिजुभाई+बधेका+की+शैक्षिक+अवधारणा+का+वर्णन&sa=X&ved=2ahUKEwjKnfi1rpDkA

https://www.google.co.in/search?q=गिजुभाई+की+रचनाएँ&sa=X&ved=2ahUKEwjKnfi1rpDkAhWP7HMBHdPyCWgQ1QIoA

https://www.google.co.in/search?source=hp&ei=1lJbXf3rH5a6rQG3qZXwCA&q

https://sol.du.ac.in/pluginfile.php/201117/mod_resource/content/1/education_Unit%20I%2CIII_HindiM.pdf

https://www.patrika.com/miscellenous-india/who-was-professor-yashpal-know-his-10-important-things-1631035/

https://aajtak.intoday.in/education/story/scientist-and-educationist-yashpal-die-in-age-of-91-years-1-943054.htm

https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/178261

https://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/91328/6/06_chapter%201.pdf

परिशिष्ट
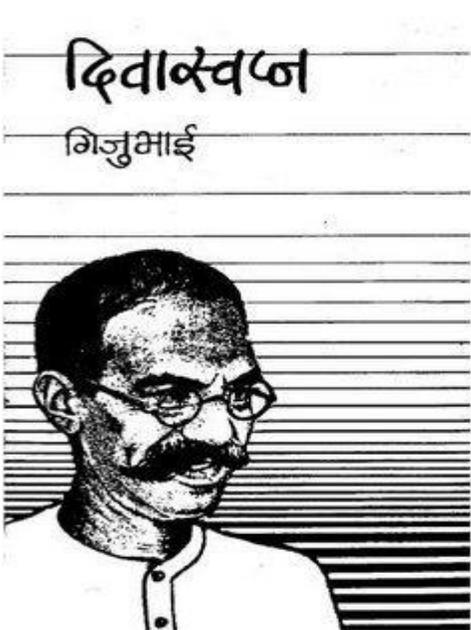
गिजूभाई बढ़ेका से सम्बन्धित पुस्तकें

बस्ते के बढ़ते बोझ की चिंता

जगमोहन सिंह राजपूत

बस्ते के बोझ से संबंधित चर्चा नई नहीं है। लगभग तीस वर्ष पहले राज्यसभा में इस मसले को आरके नारायण ने उठाया था

मानव संसाधन विकास मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने एनसीईआरटी के पाठ्यक्रम को आधा करा देने की घोषणा करके स्कूल जाने वाले बच्चों के जीवन में एक बड़ी सुखद संभावना और हलचल पैदा कर दी है। इस खबर से परिचित हुए अधिकांश बच्चों के चहरे पर चमक सी दिखाई देती है। वे यह पूछते हैं कि क्या यह सच में हो जाएगा? कब तक होगा? कैसे होगा? शिक्षा जगत में भी यह इस समय का सबसे अधिक चर्चित विषय बन गया है। अधिकांश लोग यह मानते हैं कि पहले के अनुभवों के कारण उनकी आशाओं पर आशंकाएं हावी हो जा रही हैं। कारण स्पष्ट है कि सरकारी स्कूलों में लगभग उस हर पक्ष में बड़ी कमियां मौजूद हैं जो स्वीकार्य स्तर की शिक्षा पाने और देने के लिए आवश्यक हैं। निजी स्कूल बस्ते का अधिक से अधिक बोझ लादने में आपस में प्रतिस्पर्धा करते हैं। इनमें से अधिकांश सीबीएसई के साथ संबद्ध होने के कारण एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें लागू तो करते हैं, मगर लगभग हर विषय में निजी प्रकाशकों की कम से कम दो-तीन पुस्तकें और भी खरीदते हैं। चूंकि अधिकांश माता-पिता आर्थिक रूप से संपन्न ही होते हैं इसलिए वे बच्चों का भविष्य बनाने के लिए इस बोझ को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। उन्हें अधिक से अधिक अंक चाहिए, लेकिन बच्चे पर क्या बीतती है इससे वे चिंतित नहीं होते हैं। यही नहीं इस वर्ग के बच्चों को अधिक पुस्तकों के बोझ के साथ-साथ एक से अधिक ट्यूशन और कोचिंग के लिए भी जाना पड़ता है। कुछ उत्साही माता-पिता इसी से संतुष्ट नहीं होते हैं। वे उन्हें डांस, टेबल-टेनिस, स्विमिंग इत्यादि की कोचिंग में भी भेजते हैं। जाहिर है कि बस्ते के लगातार बढ़ते बोझ के लिए एनसीईआरटी को केवल आंशिक रूप में ही जिम्मेदार माना जा सकता है। निजीकरण, जो एक तरह का व्यापारीकरण ही है, के बढ़ने के साथ बच्चों पर बोझ बढ़ा है। दूसरी तरफ सरकारी स्कूल हैं जो राज्यों के बोर्ड से संबद्ध हैं। इन स्कूलों में किताबें और स्वेटर भी समय से नहीं मिल पाते हैं। अध्यापक या तो अतिथि अध्यापक श्रेणी के या कम मानदेय वाले ही सारा उत्तरदायित्व निभाते हैं। वे अपने अस्थायित्व से चिंतित और उद्विग्न बने रहने को मजबूर हैं। ऐसे में लगनशीलता और कर्मठता की अपेक्षा का कोई अधिक अर्थ नहीं रहता है। इन स्कूलों में यह प्रश्न सदा ही उभरता है कि इन बच्चों को कौन पढ़ाए, कौन उन्हें प्रोत्साहन दे और समस्या समाधान में सहायक बने? यहां बच्चे पर बोझ और दबाव की प्रकृति बदल जाती है, मगर परिमाण असहनीय ही होता है। व्यवस्था में से कोई भी कमियों के लिए उत्तरदायी नहीं होता है। केवल बच्चा ही फेल घोषित कर दिया जाता है और वह इस अपमान बोध को जीवन भर ढोता रहता है।

बस्ते के बोझ से संबंधित चिंता और चर्चा नई नहीं है। लगभग तीस वर्ष पहले बस्ते के बोझ पर एक देशव्यापी बहस हमारे अत्यंत सम्माननीय साहित्यकार आरके नारायण के राज्यसभा में दिए गए उनके पहले भाषण के बाद प्रारंभ हुई थी। उन्होंने अत्यंत मार्मिक शब्दों में इस चिंताजनक स्थिति का वर्णन किया था जिसे सारे देश ने जाना और उनके प्रयास को सराहा। आरके नारायण ने बताया था कि किस प्रकार बच्चे बस्ते के भारी बोझ के कारण आगे को झुककर चलने को मजबूर होते हैं और इसका उनके स्वास्थ्य पर कितना घातक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने बच्चों की पीठ पर प्रतिदिन लादे जाने वाले बोझ के लिए अंग्रेजी का शब्द 'पैक-म्युल' का प्रयोग किया था। आशय था कि हम बच्चों के साथ वही सलूक कर रहे हैं जो खच्चरों के साथ किया जाता है। उनका कहना था कि हम प्रातः बच्चों के ऊपर भारी बस्ते का बोझ लादकर और स्कूल के लिए विदाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। उन्होंने सदन से अनुरोध किया था कि वह इस पर विचार करे और शिक्षा व्यवस्था को इस प्रकार बदले कि बचपन को प्रस्फुटित होने का अवसर मिल सके। सरकार पर असर हुआ और मार्च 1992 को प्रसिद्ध वैज्ञानिक और शिक्षाविद प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। इस समिति को बच्चों पर विशेषकर छोटे बच्चों पर बस्ते का बोझ को कम करने के उपाय सुझाने थे और साथ ही साथ सीखने की गुणवत्ता में सुधार और जीवन पर्यंत सीखने के कौशल विकसित करने की भी दिशा देनी थी। इन्हें प्रवेश की अर्हताएं पाठ्यक्रम पूरा होने पर उसके एक-दूसरे से जुड़े पक्षों को भी देखना था। समिति ने गहन विचार-विमर्श और विद्वानों से राय-मशविरा करके अनेक ऐसे महत्वपूर्ण पक्षों का निर्धारण किया जिनमें सुधार आवश्यक थे। इसमें सूचना और ज्ञान के अंतर की समझ पैदा करना अत्यंत जरूरी पाया गया। पाठ्यक्रम बनाने और पाठ्य पुस्तकों के लेखन में ऐसे लोगों की भरमार होना सही नहीं माना गया जो स्कूली शिक्षा से व्यवहारिक रूप से जुड़े नहीं होते हैं। पाठ्यक्रम की केंद्रिकता, उसमें स्थानीय तत्वों की उपस्थिति का अभाव होना और इस कारण उसका अरुचिकर हो जाना भी सामने आया। यह भी पाया गया कि कोठारी आयोग (1964-66) के बाद से अनेकानेक स्तरों पर बार-बार परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिए की गई संस्तुतियों का लागू न हो पाना और रटने से बच्चों को निजात न दे पाना भी अनावश्यक बोझ बन रहा है। इस समिति ने 'समझ के बोझ' की भी बात उठाई थी और अध्यापकों और शिक्षण विधि में परिवर्तन के लिए भी संस्तुतियां की थीं। इन सभी पर पुनर्विचार आवश्यक होगा।

यशपाल समिति ने कक्षा छह से दस तक इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र और नागरिक शास्त्र को चार विषयों के रूप में न पढ़ाकर एक समेकित विषय सामाजिक विज्ञान के रूप में पढ़ाने की संस्तुति की थी। समिति की इस सिफारिश पर एक महत्वपूर्ण प्रयास एनसीईआरटी ने सन 2000 में स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम की नई रुपरेखा के आधार पर किया। इन चार विषयों में चार पाठ्यपुस्तकों के स्थान पर एक समेकित पाठ्यपुस्तक बनाई गई यानी लगभग 800 पृष्ठों के स्थान पर केवल करीब 200 पृष्ठ, मगर यह प्रयास मई 2004 में केंद्र में सरकार बदलने के बाद निरस्त कर दिया गया। इसकी संभावना पर फिर से विचार किया जा सकता है। बस्ते के बोझ की समस्या नई नहीं है। इसका समाधान ढूंढ़ने के लिए जिस स्तर के साहस की आवश्यकता थी वह सरकार और मंत्री के स्तर पर पहली बार सामने आया है। जो समाधान सुझाया गया है उसे व्यवहारिक रूप में स्कूलों और कक्षाओं तक पहुंचाने में लिए सघन बहुपक्षीय प्रयासों को निर्धारित कर कर्मठता और लगनशीलता से लागू करना होगा।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय और उसके मंत्री ने स्वेच्छा से एक अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या के समाधान की चुनौती अपने सामने रख ली है उन्हें प्रत्येक राज्य सरकार का सघन और सक्रिय सहयोग अपेक्षित होगा। सबसे पहले सरकारी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों को आदर्श संस्थान बनाना प्रारंभ किया जा सकता है। चार वर्षीय शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ करना सराहनीय कदम है। निजी संस्थानों को रास्ते पर लाना भी आवश्यक होगा। सुप्रशिक्षित अध्यापक-प्रशिक्षक और अध्यापक ही बच्चों के लिए उचित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें तथा अन्य गतिविधियों की रूपरेखा तैयार कर सकते हैं। विशेषज्ञ केवल उनकी सहायता कर सकते हैं। देश को शिक्षा सुधार में इन पर विश्वास करना ही होगा।

(लेखक एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक हैं)

response@jagran.com

यशपाल जी से सम्बन्धित न्यूज पेपर व अनेक पुस्तके

? ???

अप्सरा का शाप

यशपाल

मूल्य: Rs. 150

कुटिया से मेनका के लोप हो जाने पर जब तक शिशु कन्या महर्षि विश्वामित्र की गोद में किलकती-हुमकती रही, वे शिशु में मग्न रह कर सब कुछ भूले रहे... आगे...

  ? ???	**अभिशप्त** यशपाल मूल्य: Rs. 225 ‘अभिशप्त’ कहानी संग्रह में उनकी ये कहानियाँ शामिल हैं: दास धर्म, अभिशप्त, काला आदमी, समाधि की धूल, रोटी का मोल, छलिया नारी, चार आने, चूक गयी, आदमी का बच्चा, पुलिस की दफा, रिजक, भगवान किसके?, नमक हलाल, पुनिया की होली, हवाखोर और शम्बूक आगे...
  ? ???	**अमिता** यशपाल मूल्य: Rs. 95 ‘अमिता’ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कल्पना को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है। आगे...
  ? ???	**उत्तमी की माँ** यशपाल मूल्य: Rs. 175 ‘उत्तमी की माँ’ शीर्षक कहानियों का बारहवाँ संग्रह... आगे...
  ? ???	**उत्तराधिकारी** यशपाल मूल्य: Rs. 175 कहानी संग्रह... आगे...
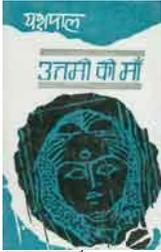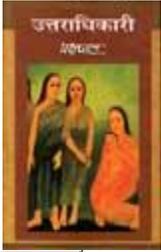
क्यों फ़ँसें!

यशपाल

मूल्य: Rs. 160

वैचारिक निष्ठा के आधार पर समाज और संबंधों का विश्लेषण अक्सर ही यशपाल के उपन्यासों का विषय रहा है आगे...

खच्चर और आदमी

यशपाल

मूल्य: Rs. 175

यशपाल के लेखकीय सरोकारों का उत्स सामाजिक परिवर्तन की उनकी आकांक्षा, वैचारिक प्रतिबद्धता और परिष्कृत न्याय-बुद्धि है आगे...

गाँधी की शव परीक्षा

यशपाल

मूल्य: Rs. 150

शोषण में निरीहता, अहिंसा और दरिद्रनारायण की सेवा आदि सिद्धान्तों का मूल्यांकन... आगे...

गाँधीवाद की शव परीक्षा

यशपाल

मूल्य: Rs. 200

आगे...
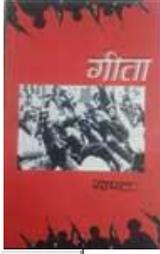
गीता

यशपाल

मूल्य: Rs. 150

'गीता' शीर्षक यह उपन्यास पहले 'पार्टी कामरेड' नाम से प्रकाशित हुआ था। इसके केन्द्र में गीता नामक एक कम्युनिस्ट युवती है जो पार्टी के प्रचार के लिए उसका अखबार बम्बई की सड़कों पर बेचती है और पार्टी के लिए फंड इकट्ठा करती है

आगे...
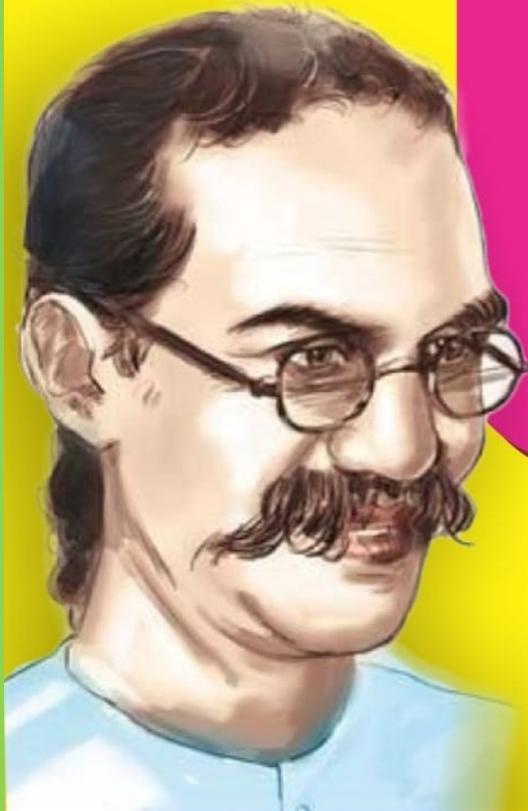
“EARLY CHILDHOOD EDUCATION IS THE FIRST & FOREMOST STEP TOWARDS BUILDING A GREAT NATION.”

– Gijubhai Badheka